आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि

महादेवी वर्मा

गंगाप्रसाद पाण्डेय

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य :
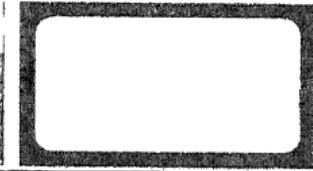
प्रथम संस्करण, १९६८

मुद्रक : राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स, क्वीन्स रोड, दिल्ली

महादेवी वर्मा

परिचय

शुभश्री महादेवीजी सांस्कृतिक कवयित्री हैं। यह आश्चर्य के साथ अत्यन्त क्षोभ का विषय है कि हमारे देश में अभी तक काव्य का विश्लेषण-विवेचन संस्कृति की भूमिका पर अत्यन्त विरल है। वास्तव में सांस्कृतिक मूल्यों के प्रकाश के बिना सम्यक् काव्यालोचन सम्भव नहीं है। साहित्य, विशेषतः काव्य मनुष्य की इन्द्रिय-सुख-साधक स्थूल प्रयोजनवती प्राकृतिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति-मात्र न होकर उसकी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रमुख उपादान है।

संस्कृति अपने स्वरूप और स्वभाव से ही सर्जनात्मक है। रूप और भाव पदार्थ और भावार्थ, सत्य और सौन्दर्य, शिव और शक्ति तथा आत्मा और परमात्मा का साम्य ही भारतीय संस्कृति का मूल रहस्यमय सूत्र है। भावात्मक सृजनात्मक एवं चिन्तनात्मक साम्य, सन्तुलन से समन्वित समृद्ध संस्कृति मानव-जीवन के विकास का अनिवार्य अंग और महत्त्वपूर्ण मूल्य है।

सांस्कृतिक अनुभवों, क्रियाओं और मूल्यों की व्याख्या और जीवन के परम मूल्य का अन्वेषण करनेवाले दर्शन और उसे भावात्मक दृष्टिकोण से प्रतिफलित करनेवाले काव्य में हमारे यहाँ कभी कोई विरोध नहीं रहा। भारत में काव्य और दर्शन, दोनों को अध्यात्मविद्या के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। वस्तुतः दोनों की प्रणाली और व्यवहार में ही अन्तर है, निष्कर्ष और उपलब्धि में नहीं, क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक ही है। दोनों ही आत्मसाक्षात्कार पर बल देते हैं। इसी कारण दोनों में अनुभूति का प्राधान्य स्वीकार किया गया है। अनुभूति की भूमि में चाहे अन्तर हो, पर स्थूल तर्क-बुद्धि का दोनों में ही निषेध है—'नैषा तर्केण मतिरापनेया।' इसीलिए अध्यात्म को रहस्य की संज्ञा भी दी गयी है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति' के समात्मभाव का उन्मेष ही दर्शन में 'समोऽहं सर्वभूतेषु' के सर्वात्मवाद के सिद्धान्त में प्रतिष्ठित हुआ है। समात्मभाव की

सार्थकता के लिए जिस व्यापक पारस्परिक स्नेह, सद्भाव, समानता और समानुभूति की आवश्यकता एवं अनिवार्यता होती है, वही संस्कृति का मूल प्रतिपाद्य और चरम मूल्य है। सांस्कृतिक मूल्यों में व्यक्ति के प्राकृतिक व्यक्तित्व की एकान्त पृथक्ता का कोई स्थान नहीं रहता, क्योंकि व्यक्तिसत्ता आत्मिक चेतना का रूप न होकर ऐन्द्रिक संवेदन का ही लक्षण है। संस्कृति का आत्मिक समभाव स्थूल प्रकृति और उससे प्रेरित संवेदना का अतिक्रमण करता हुआ प्रकृति, व्यक्ति और आत्मा, तीनों का समाहार कर लेता है। अध्यात्म की यही प्रमुख विशेषता है।

मनुष्य जिस चेतना की अभिवृद्धि के कारण अन्य प्राणियों के समान केवल प्राकृतिक जीवन से संतुष्ट नहीं हो पाता, वह प्राकृतिक नियमों की ज्ञाता होने के कारण उसका अतिक्रमण कर अपने आन्तरिक प्रकाश और मौलिक भावविस्तार तथा प्रज्ञात्मक चिन्तन के माध्यम से संस्कृति की सर्जनात्मक सीढ़ियों पर आरोहण करती हुई सर्वात्मचेतन और सर्वात्मभाव से समन्वित अध्यात्म में ही अपनी पूर्णता प्राप्त करती है। वस्तुतः संवेदना, चेतना की आरम्भिक, विचार-दर्शन माध्यमिक एवं अध्यात्म उसकी अन्तिम स्थिति या परिणति है। प्रकृति से संस्कृति की ओर का यह गुणात्मक विकास ही मनुष्य को पशु-प्राणी से एक भिन्न स्थिति देकर उसे जीवन-सार्थकता की अनन्त सम्भावनाओं और क्षमताओं के प्रति उन्मुख करते हुए स्थूल प्रयोजनातीत स्वलक्ष्य मूल्यों के आकलन और अनुभव का उत्साह और आकर्षण देता रहता है। मनुष्य का यह सांस्कृतिक अभियान उसकी चेतना की ऊर्ध्वगामी वृत्ति का प्रमाण होने के साथ-साथ विभिन्न चेतनाओं के परस्पर साम्य का आधार आत्मतत्त्व को जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में भी सफल होता है।

मूल्य सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं—एक निमित्त मूल्य और दूसरा स्वलक्ष्य मूल्य। निमित्त मूल्य की वस्तु वह होती है जो किसी अन्य उद्देश्य का साधन होती है। निमित्त मूल्य सापेक्ष मूल्य होता है। स्वलक्ष्य मूल्य वह मूल्य है जो किसी अन्य उद्देश्य का साधन न होकर स्वयं आत्माश्रय होता है—उसका मूल्य वह स्वयं ही होता है। संस्कृति स्वलक्ष्य मूल्य है। इस मूल्य की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह सभी विचारशील प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा समान रूप से वांछनीय माना जाता है।

भारतीय मनीषा ने मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा का अधिष्ठान माना है और उसके अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष नामक चार मूल्यों को स्वीकार किया है, जो उसके व्यक्तित्व के विकास के भौतिक और आध्यात्मिक उपादान हैं। अर्थ, काम तथा धर्म निमित्त मूल्य हैं और इनका सम्बन्ध सामाजिक जीवन की प्रगति से है, किन्तु मोक्ष जीवन का स्वलक्ष्य चरम मूल्य है। मोक्ष मूल्य न तो लौकिक ही है और न पारलौकिक, वरन् पारमार्थिक है। परमार्थ वह प्रवृत्ति है जो मनुष्य को स्वार्थ से ऊपर उठाकर निःस्वार्थ बनाती है और आत्मविकास के साथ उसे अन्य प्राणियों की सेवा और कल्याण करने की प्रेरणा देती है। निष्काम कर्म इसीका दूसरा नाम है। मोक्ष का सम्बन्ध आत्मा से है और उसका उद्देश्य सबके साथ समभाव रखते हुए प्राकृतिक क्षणिक सुख-दुःखों से मुक्त होकर आत्म-साक्षात्कार करना है, जो इसी जीवन और जगत् में सम्भव है।

इस अवस्था का प्रत्यक्ष अनुभव जीवन्मुक्ति की स्थिति में चरितार्थ होता है। यह स्थिति कोरी सैद्धान्तिक धारणा या कोई अमूर्त आदर्शमात्र नहीं, अपितु एक ज्वलन्त तथा वास्तविक अनुभवात्मक अवस्था है। जीवन्मुक्त व्यक्ति वह है, जो अपने आध्यात्मिक संयम तथा नैतिक आचरण से नश्वर सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, स्व-पर के सभी प्रतीयमान द्वन्द्वों और सापेक्षताओं का अतिक्रमण करके सभी स्थितियों में समान रहता है। वह संसार में रहते हुए, जीवन और जगत् का अनुभव करते हुए भी उसमें आसक्त और लिप्त नहीं होता। वह निरन्तर आत्मोत्थान और लोकमंगल की साधना में लगा रहता है। सर्व-भूत-हित-रत उसका स्वभाव बन जाता है। उसका जीवन स्वयं आनन्दमय होता है और वह सभीको आनन्द-मार्ग में लाने का प्रयत्न करता रहता है।

जीवन्मुक्ति की स्थिति प्राप्त करने का उद्देश्य सामाजिक जीवन या लोक-मंगल के मूल्यों की अवहेलना कदापि नहीं है, वरन् इन मूल्यों को उदात्त, व्यापक तथा पूर्ण रूप देना है। जीवन के सभी मूल्यों का यथास्थान अपना-अपना महत्त्व है, किन्तु उस महत्त्व का बोध हमें केवल तभी हो सकता है, जब हम किसी ऐसे परममूल्य का ज्ञान रखते हों जो सभी मूल्यों के परस्पर संघर्षों और विरोधों का समन्वय तथा सामञ्जस्य कर सके और स्वयं इन सबसे परे होकर भी इनका निषेध न करे। मोक्ष या जीवन्मुक्ति की स्थिति एक ऐसा ही स्वलक्ष्य आध्यात्मिक मूल्य है। भारतीय संस्कृति अपने भावात्मक तथा चिंतनात्मक उत्कर्ष, काव्य और

दर्शन, दोनों में ही आध्यात्मिक मूल्यों को सर्वाधिक महत्त्व और मान्यता देती है।

संस्कृति का आयोजन प्राकृतिक परिवेश की क्रिया-प्रतिक्रिया से ही आरम्भ होता है। स्वभावतः बाह्य प्रकृति और मानव-अर्जित संस्कृति में सामञ्जस्य की स्थिति अनिवार्य रहती है। प्रकृति के प्रति मानव की संस्कारगत अबाध आत्मीयता संस्कृति में संयमित मूल्यगत परिष्कारप्रियता बन जाती है। हमारा देश प्राकृतिक परिवेश की विविधता की दृष्टि से एक विशेष महत्त्व रखता है। इसी कारण इसकी संस्कृति भी अपनी अलग विशेषता रखती है। प्रकृति के समस्त बाह्य विभेदों के रहते हुए भी सम्पूर्ण देश एक गहरी एकता के सूत्र में बँधा हुआ है। इसका प्रधान कारण यहाँ के निवासियों की जीवन और प्रकृति के विविध रूपों में व्याप्त आन्तरिक एकता की अनुभूति ही कही जाएगी। वस्तुतः प्रकृति और जीवन की बाह्य विविधता और भिन्नता में अन्तर्हित आन्तरिक एकता का बोध और अनुभव भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता का मूल उत्स है।

महादेवीजी ने लिखा है—'संस्कृति मनुष्य के, बुद्धि और हृदय के जिस परिष्कार और जीवन में उसके व्यक्तीकरण का पर्याय है, उसका दाय विभिन्न भू-खण्डों में बसे मानव-मात्र को प्राप्त है, परन्तु संस्कृति की साहित्य में प्राचीनतम अभिव्यक्ति वेद-साहित्य के अतिरिक्त अन्य नहीं। वेदकाल का मानव भौतिक जीवन का भावुक कलाकार ही नहीं, आत्मा का अथक शिल्पी भी है। जिस तूलिका से वह अपने पार्थिव परिवेश को उज्ज्वल रेखाओं और इन्द्रधनुषी रंगों में चित्रमयता देता है, उसीसे अपने अन्तर्जगत् में मंगल संकल्पों को अजर मूर्तिमत्ता प्रदान करता है। अपने-आपको 'पृथिवी पुत्र' की संज्ञा देकर वह धरती के वरदानों को जैसा आदर देता है, 'आत्मा का विनाश नहीं होता' स्वीकार कर वह अखण्ड चेतना के प्रति भी वैसा ही विश्वास प्रकट करता है। मनुष्य की प्रज्ञा की जैसी विविधता और उसके हृदय की जैसी रागात्मक समृद्धि वेद-साहित्य में प्राप्त है, वह मनुष्य को न एकांगी दृष्टि दे सकती है, न अन्धविश्वास। आकाश के अखण्ड विस्तार में केन्द्रित दृष्टि के लिए घट की सीमा में प्रतिबिम्ब आकाश ही अन्तिम सत्य कैसे हो सकता है? वैदिक चिंतक की तत्त्व-स्पर्शी दृष्टि सृष्टि की असीम विविधता को पार कर एक तत्त्वगत सूत्र खोज लेती है।'

इसी तत्त्वगत एकता के भावोदय के फलस्वरूप वैदिक ऋषियों-कवियों ने घोषणा की—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' अथवा 'कवयो वचोभिरेकं सन्तं

बहुधा कल्पयन्ति'। ऋग्वेद की इन ऋचाओं से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक परम्परा का वैदिक काल में ही पर्याप्त प्रौढ़ विकास हो चुका था। वेदान्त में इस सांस्कृतिक उपलब्धि की व्याख्या और इसकी अनुभूति का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है—'ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्'—अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है उसमें ईश का आवास है। ऐसे तत्त्वदर्शी के लिए सबमें व्याप्त एक परमसत्य की सत्ता ही इस विश्व को सत्य बनाती है। वह यह भी जानता है कि जो तेजोमय अमृत चेतन-पुरुष विश्व-चेतना का अक्षय स्रोत है वही उसके अन्तःकरण में भी अधिष्ठित है। इसके साक्षात्कार के लिए उसे अपनी चेतना और विश्व-चेतना में समभाव की स्थापना करना अनिवार्य है, क्योंकि जो शक्ति या चेतना विश्व के विराट रूपों में नाना भाँति से संचरित हो रही है, वही मनुष्य के भीतर उसकी चेतना का रूप धारण करती है। दोनों में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं, वरन् एक अटूट सम्बन्ध है। अस्तु, सबके प्रति संवेदना, सहानुभूति और समत्व की भावना के माध्यम से ही इस रहस्यमय अव्यक्त शक्ति का अनुभव और साक्षात्कार किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। सृष्टि की रचना और उसके विकास-क्रम से भी यह प्रत्यक्ष है कि असीम का सीमाबद्ध प्रकृति में प्रकाशित होना, अव्यक्त का व्यक्त में प्रकट होना ही सृजन का सारतत्त्व और रहस्य है। वस्तुतः जो प्रत्यक्षतः अपूर्ण और सीमित जान पड़ता है वह किसी पूर्ण एवं असीम के ही प्रस्फुटन का निरन्तर विकसनशील स्वरूप है यथा बीज से अंकुर, पल्लव, कलिका, पुष्प तथा फल।

इस आन्तरिक और आध्यात्मिक अनुभूति की स्थिर भूमिका पर पहुँचकर जो व्यक्ति सम्पूर्ण प्राणियों और पदार्थों में एक ही आत्मा की व्याप्ति का अनुभव करता हुआ निरन्तर आत्मा का ही साक्षात्कार करता है, उसे किसी प्रकार का शोक, मोह नहीं होता, वह किसीसे विद्वेष अथवा घृणा भी नहीं कर सकता—'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।' आध्यात्मिक भावानुभूति और तत्त्व-मीमांसा के अनुसार विश्व का अनेकत्व केवल भौतिक व्यक्त सत्ता तक ही सीमित है, सूक्ष्म रूप से विश्व की आधारभूत अव्यक्त सत्ता निस्सन्देह एक एवं अद्वैत है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान भी इस अद्वैतवादी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं।

इस सर्वानुभव को, सबके प्रति समात्मभाव को प्रत्यक्ष करने का सर्वोत्तम

साधन सबके प्रति समान प्रेमभाव का आकलन है, क्योंकि प्रेम का रस इन्द्रियों का नहीं, भाव का रस है, आत्ममिलन का आनन्द है, स्व-पर का अद्वैत है। कहा भी गया है—'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् य देश आकाश आनन्दो न स्यात्।' आत्मा रसस्वरूप है। इसी कारण जीवात्मा रस पाकर आनंदित होती है। यदि आकाश इस रस (प्रेम-आनन्द) से परिपूर्ण न होता तो विश्व में कौन अनुप्राणित होता और कौन गतिशील होता? आशय यह कि प्रेम (रस-आनन्द) चेतना का पूर्ण रूप है, इसलिए प्रत्येक अस्तित्व का परम प्रयोजन प्रेम से ही पूर्ण होता है। प्रेम ही सृष्टि का मूल कारण है, जो आत्मा या ब्रह्म से उद्‌भूत होता है। वस्तुतः अपनी चेतना को सर्वात्मप्रेम के उच्च धरातल पर ले जाकर ही हम ब्रह्मविहार अथवा असीम आनन्द से एकात्मता प्राप्त कर सकते हैं। स्वभावतः ऐसा प्रेमभाव अपने में स्वतः पूर्ण और उच्चतम आध्यात्मिक मूल्य होता है। सबके साथ प्रेम द्वारा परस्पर संपृक्त होकर ही निःसीम आनंदमय जीवन का अनुभव प्राप्त किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं। जिस प्रकार कमल के खिलने के लिए रस (जल) और प्रकाश अनिवार्य हैं, उसी प्रकार हमारे चैतन्य-कमल के उत्फुल्ल होने के लिए रस (भाव) और प्रकाश (ज्ञान) दोनों आवश्यक हैं। इस समष्टि प्रेम की काव्यात्मक अभिव्यक्ति को अध्यात्मकाव्य अथवा आधुनिक शब्दावली में रहस्यकाव्य या रहस्यवाद की संज्ञा दी जाती है।

आत्मा की मौलिक एकता का आधार ग्रहण करने के कारण अध्यात्म में अखिल अस्तित्वों के आन्तरिक साम्य का भाव—समात्मभाव को ही महत्त्व दिया जाता है और अध्यात्म की उच्चतम स्थिति का प्रतीक बन इसी भाव की सक्रियता पर निर्भर करता है। चेतना की आध्यात्मिक शक्ति से अनुप्राणित होने के कारण मनुष्य का जीवन असीम परिधि की ओर विस्तृत होता रहता है और वह अपने सर्जनात्मक क्षेत्र में आत्मभाव, सर्वात्मभाव तथा समात्मभाव के आरोहण-क्रम में परमात्मभाव तक की और चिंतन के क्षणों में स्वात्मचेतन, सर्वात्मचेतन और परमात्मचेतन तक की यात्रा करता रहता है। वस्तुतः प्राकृतिक सत्ता, प्राणी और मानवीय जीवन एवं परम चेतन में चेतना की स्थितियों के विकास की भिन्नता को छोड़कर तत्त्वतः कोई भेद नहीं, क्योंकि एक ही चेतन इन सबमें परिव्याप्त और अन्तर्हित है।

आत्मा या ब्रह्म कोई व्यक्ति नहीं, विश्वरूप है। उसके प्रति प्रेम-भावना समष्टि प्रेम का ही प्रतीक है। सर्गारम्भ में प्रेम की आनन्दमय सृजनेच्छा से ही उसने अपने को द्विधा विभक्त कर लिया था। अपनी परा प्रकृति में परात्पर रहते हुए भी वह जीवरूप से अपरा प्रकृति में व्याप्त हो गया। जीवात्मा विश्व-प्रेम के माध्यम से पुनः उसीके साथ प्रथम स्थिति की अद्वैतता में प्रतिष्ठित होना चाहती है। सबके साथ प्रेम की अद्वैत भावना उसी अनुभूति का एक रूप है।

हमारा भौतिक जीवन सापेक्ष और अपूर्ण है। अध्यात्मबोध का रहस्य ही यह है कि वह सापेक्ष से निरपेक्ष की ओर तथा अपूर्ण से पूर्ण की ओर जाने का प्रयत्न करता है। यह पूर्णता धारणामात्र नहीं, वास्तविक आत्मानुभूति है। संसार में ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने आध्यात्मिक मार्ग पर चलकर पूर्णता और निरपेक्षता का पूर्ण अनुभव किया है और ऐसे परम शुभ और चरम आनंद की प्राप्ति की है, जिनकी अपेक्षा में जीवन के अन्य मूल्य व्यर्थ और फीके जान पड़ते हैं। इसलिए जिस प्रकार वैयक्तिक मूल्यों को सामाजिक मूल्यों के अधीन करना उचित है, उसी प्रकार सामाजिक मूल्यों को आध्यात्मिक मूल्यों के अधीन करना संगत और अनिवार्य है। हमारी संस्कृति के अनुसार जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों का स्थान उच्चतम है, अन्य सभी मूल्य इसकी अपेक्षा गौण हैं।

इसी दृष्टिकोण के कारण भारतवासी केवल तथ्यपरक वैज्ञानिक जिज्ञासा की शान्ति अथवा केवल पार्थिव प्रयोजन की सिद्धि के लिए कभी किसी वस्तु की ओर आकर्षित नहीं हुए, क्योंकि उनके जीवन का उद्देश्य अस्तित्व-केन्द्रित न होकर मूल्य-केन्द्रित था। उनका मनोरथ विश्व की विराट आत्मा के साथ आत्ममिलन की अक्षय शान्ति और आनन्द का अनुभव करना था न कि नश्वर अस्तित्व की रक्षा का आकुल-व्याकुल आयोजन। वे जानते थे कि विश्व की प्रत्येक सत्ता से उनका आत्मिक साहचर्य और समवाय है, क्योंकि निखिल विश्व की सभी विभिन्न विभूतियाँ एक ही सूत्र में ग्रथित और सम्बन्धित हैं। एकत्व, ममत्व और समत्व की भावानुभूति के कारण उन्हें सम्पूर्ण विश्व में एक ही आध्यात्मिक स्पंदन का अनुभव होता था और वे पृथक्ता और परिच्छिन्नता की बात ही नहीं सोच पाते थे। उनके इस विश्वास को मृत्यु भी नहीं भंग कर सकती थी—यस्य छाया अमृतं, यस्य मृत्युः—उसकी छाया में ही अमृत है और उसीमें मृत्यु भी है।

पूर्वजों की इस महान उपलब्धि को जीवन्त और क्रियाशील रखना हमारी

सांस्कृतिक धरोहर है। जिस प्रकार आंगिक विविधता के साथ सबमें सामञ्जस्य-जनित प्रक्रिया के कारण हम अपने शरीर को एक मानकर अपनाते चलते हैं, उसी प्रकार इस विश्व के गठन में निहित सामञ्जस्य को देख-समझकर इसे भी सम्पूर्ण एक मानने में मुझे कोई कठिनाई नहीं जान पड़ती। अलगाव, संघर्ष, भिन्नता सम्भवतः विश्वात्मा के साथ हमारे समभाव की कमी का ही प्रतीक हैं।

आधुनिक युग में महादेवीजी अपने इस सांस्कृतिक-आध्यात्मिक उत्तराधिकार का पूर्ण निर्वाह करने में सतत संलग्न हैं। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने कहा भी है—'इस बुद्धिवाद के युग में भी मुझे जिस अध्यात्म की आवश्यकता है, वह किसी रूढ़ि, धर्म या सम्प्रदायगत न होकर उस सूक्ष्मता की परिभाषा है जो व्यष्टि की सप्राणता में समष्टि गत एकप्राणता का आभास देती है, इस प्रकार वह मेरे सम्पूर्ण जीवन का ऐसा सक्रिय पूरक है, जो जीवन के सब रूपों के प्रति मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है।'

सब रूपों के प्रति समान रूप से ममता जगानेवाले भाव को ही समात्मभाव कहा गया है। इसीकी संज्ञा महाभाव भी है। महादेवीजी इसी महत् भावोन्मेष की सांस्कृतिक-आध्यात्मिक कवयित्री हैं—

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला।

× × ×

मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना ले।

महादेवीजी का जन्म सम्वत् १९६४ में होली के दिन फर्रुखाबाद, उत्तरप्रदेश में हुआ। जन्मदिन की यह रंगमयता और सार्वजनीनता उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सन्निहित है। होली धरती का निजी उत्सव है, क्योंकि धरती के रूप, रंग, रस तथा गंध होली में सजीव हो उठते हैं। अन्नमयी नवीन फसल आत्मत्याग द्वारा मानवीय जीवन-साधना का उपहार लेकर उपस्थित होती है और चारों ओर राग-रंग की पिचकारियाँ छूटने लगती हैं। सभी लोग पिछला वैर-भाव भूलकर परस्पर गले मिलते हैं। नये वर्ष का प्रारम्भ होता है। प्रह्लाद (प्रकृष्ट आह्लाद) की रक्षा और पूतना (जो पवित्र नहीं है) का अन्त होता है। जन्मदिन की सारी विशेषताएँ महादेवीजी के साहित्य में चरितार्थ हैं।

जीवन और साहित्य के पट में इतने विभिन्नरंगी सूत्रों का सम्मिलन बहुत ही विरल होता है। रहस्यकवि, यथार्थवादी गद्यकार, समन्वयवादी समालोचक होने

के साथ ही वे अद्वितीय रेखाचित्रकार, संस्मरण-लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबंधकार, उच्चकोटि की चित्रकर्त्री और प्रबुद्ध समाज-सेविका तथा राष्ट्रीय संस्कृति की संरक्षिका हैं। इनके रचनात्मक कार्यों के प्रतीक प्रयाग महिला विद्यापीठ और सहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक सस्थाएँ और पाठशालाएँ है। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में इनके व्यक्तित्व की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है।

धरती के ऊपर तना नील वितान-आकाश सभी प्रकार के आलोकों और रंगों का आधार है। यदि आपने कभी संध्या का आकाश देखा है तो महादेवीजी की इन पंक्तियों का रंग परखिए—

प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग
छाया सी काया वीतराग;
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन
प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन !

महादेवीजी माँ-बाप की पहली संतान हैं। रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज में आज भी, फिर आज के प्रायः साठ वर्ष पहले तो निश्चित रूप से प्रथम कन्यालाभ शुभ या सुखद नहीं माना जाता था। सौभाग्य से इनका जन्म बड़ी प्रतीक्षा और मनौती के बाद हुआ था। बावा ने इसे कुलदेवी दुर्गा का विशेष अनुग्रह माना और आदर प्रदर्शित करने के लिए नाम रखा—महादेवी। इन्होंने अपने नाम को अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से सफल-सार्थक बना दिया। साकेतकार की यह उक्ति—'सौ सौ पुत्रों से भी अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला' वास्तव में राजा जनक की बेटियों के लिए जितनी उपयुक्त है उतनी ही श्री गोविन्दप्रसाद की पुत्री महादेवी के लिए भी। तभी तो साकेत के महाकवि गुप्तजी ने महादेवीजी के लिए लिखा है—

सहज भिन्न दो महादेवियाँ एक रूप में मिलीं मुझे,
बता बहन साहित्य-शारदा या काव्यश्री कहूँ तुझे !

महादेवीजी का काव्य करुणा-कलित-अश्रुसिक्त है। पैदा होते ही रोते तो प्रायः सभी बच्चे हैं, पर इनकी रोने की अद्‌भुत आदत। माँ हेमरानी देवी आस्तिक स्वभाव की भारतीय महिला होने के कारण पति को खिलाने-पिलाने का कार्य

नौकरों पर न छोड़कर स्वयं करना चाहती थीं, किन्तु महादेवीजी इस बीच रो-रोकर कोलाहल मचा देती थीं। माँ ने विवशता से परम्परा-प्रचलित अफीम का सम्बल ग्रहण किया। अफीम खिलायी और पँलगे पर डाल दिया। वे अपनी दैनिकी में व्यस्त हो गयीं और बालिका ने कल्पनालोक की सैर की। अफीम-सेवन से हानि जो भी हुई हो, पर प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि अन्य शिशुओं की अपेक्षा इनका विकास शीघ्र हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में ही आम की पाल से साँह चुन और चुरा लेने में आप निपुण हो गई। थोड़े-बहुत वर्णमाला-ज्ञान के होते ही बहन-भाई को चिढ़ाने लगीं।

पाँच वर्ष की होते-होते आपको भोपाल तथा इन्दौर की यात्रा करनी पड़ी, जहाँ 'अतीत के चलचित्र' का 'रामा' इन्हें मिला। छोटे भाई की स्पर्धा में रामा को आप साम-दाम-दण्ड-भेद के द्वारा केवल अपने लिए 'राजा भइया' कहने के लिए किस तरह बाध्य कर देती थीं, इसकी भी एक रोचक कहानी है। वय की गति के साथ जीवन-विस्तार की छाया में यह घर की शिशु-कुशलता बगीचे के फूलों और पड़ोसियों के घर तक पहुँचने लगी। रसाल और फूलों का यह आकर्षण रसात्मक-कलात्मक संस्कार का प्रतीक माना जाये तो 'राजा भइया' कहलाने का हठ पुरुष के साथ समानाधिकार के आग्रह का बीजारोपण जान पड़ता है।

माँ ने चाहा कि बेटी को कुछ समय खिलौनों-गुड़ियों में उलझाये रखें और कुछ समय गृहकार्य की शिक्षा दें, यदि यह न हो सके तो पाटी पकड़ाकर स्कूल ही भेज दें। महादेवी इन सब चक्करों में [illegible]

[illegible] लिए कोयला और सिंदूर के अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी न चाहिए था। परेशान होकर छोटे भाई और बहन की ओर संकेत करते हुए माँ ने कहा—खेलना छोटों का काम है, बड़ों का पढ़ना या काम करना। इन्होंने पढ़ना पसंद किया। आर्यसमाजी संस्कारों के साथ इन्हें मिशन स्कूल में भेज दिया गया। घर में हिन्दी, उर्दू, संगीत और चित्रकला के अध्ययन का प्रबंध कर दिया गया।

अध्ययनारम्भ के दिन ही आप थोड़ी देर तक अध्यापक के पास बैठी रहीं और फिर छुट्टी की माँग पेश की। आवश्यकता पूछे जाने पर तपाक से उत्तर दिया—'फूल तोड़ लाऊँ, नहीं तो माली तोड़कर बाबू (पिताजी) के फूलदान में लगा देगा, जहाँ वे सूख जाते हैं।' 'तो क्या तुम्हारे तोड़ने से नहीं सूखते?' 'सूखते तो हैं, पर

भगवानजी पर चढ़ने के बाद फिर जिज्जी (माँ) उन्हें नदी भेजवा देती हैं। माली कूड़े में फेंक देता है और बाबू उन्हें उठाने भी नहीं देते।' पंडितजी इस उत्तर से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने तुरंत छुट्टी दे दी। धीरे-धीरे पंडितजी को ज्ञात हुआ कि बालिका केवल बातचीत में ही नहीं, पढ़ने-लिखने में भी पर्याप्त प्रवीण है। लड़कियाँ और हो ही क्या सकती हैं, पढ़ाकू या लड़ाकू। महादेवीजी ने दोनों रूपों में दक्षता प्राप्त की है। लड़ाकू रूप उनके सामाजिक विद्रोह और नारी-विषयक निबन्धों में शतशः मुखरित है और उनका पढ़ाकू रूप तो जग-ज़ाहिर है।

'रामा' नामक संस्मरण-रेखाचित्र में इन्होंने अपने बचपन की अनेक मनोरंजक घटनाओं का उल्लेख किया है, जिनसे इनके स्वभाव और प्रबुद्धता का पता चलता है। दशहरे के मेले में जाने के लिए रामा ने एक को कंधे पर बिठाया और दूसरे को गोद में ले लिया। इन्हें उँगली पकड़ाते हुए बार-बार कहा—'उँगरिया जिन छोड़ियो राजा भइया।' सिर हिलाकर स्वीकृति देते हुए भी इन्होंने अँगुली छोड़कर मेला देखने का निश्चय कर लिया। भटकते-भूलते और दबने से बचते-बचते जब इन्हें भूख लगी तब रामा का स्मरण अनिवार्य हो उठा। एक मिठाई की दूकान पर खड़े होकर अपनी सारी उद्विग्नता छिपाते हुए इन्होंने सहज भाव से प्रश्न किया—'क्या तुमने रामा को देखा है? वह खो गया है।' बूढ़े हलवाई ने वात्सल्य-मुग्ध होकर पूछा—'कैसा है तुम्हारा रामा?' इन्होंने ओंठ दबाकर धीरज के साथ कहा—'बहुत अच्छा है।' हलवाई इस उत्तर से क्या समझता? अन्ततः उसने आग्रह के साथ विश्राम करने के लिए वहीं बिठा लिया। महादेवीजी ने लिखा है—'मैं हार तो मानना नहीं चाहती थी, परन्तु पाँव थक चुके थे और मिठाइयों से सजे थालों में कुछ कम निमन्त्रण नहीं था। इसीसे दूकान के कोने में बिछे टाट पर सम्मान्य अतिथि की मुद्रा में बैठकर मैं बूढ़े से मिठाई रूपी अर्घ्य को स्वीकार करते हुए उसे अपनी महान यात्रा की कथा सुनाने लगी।' सन्ध्या समय जब सबसे पूछते-पूछते बड़ी कठिनाई से रामा उस दूकान के सामने पहुँचा, तब इन्होंने विजय-गर्व से फूलकर कहा—'तुम इतने बड़े होकर भी खो जाते हो रामा!'

एक बार पड़ोस में किसी कुत्ती ने बच्चे दिये। जाड़े की रात का सनाका और ठण्डी हवा के झोंकों के साथ पिल्लों की कूँ-कूँ की ध्वनि करुणा का ऐसा संचार करने लगी जो इनके कोमल हृदय के लिए असह्य हो उठी। पिल्लों को घर उठा लाने के लिए ये इतना ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं कि सारा घर जग गया। अन्त में

पिल्ले घर लाये गये तभी ये शांत हुई। इनके इस स्वभाव में आज भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसे अप्रत्याशित अतिथि जीव-जन्तुओं से अब भी घर प्रायः भरा रहता है।

इस करुणा-कोमल स्वभाव के कारण जीवन और जगत् की किस करुण स्थिति में इनके हृदय का स्पंदन झंकृत नहीं; सामने आयी हुई किस रुक्षता को वे अपनी सहज स्निग्धता से सरस नहीं कर देना चाहतीं; ऐसी कौन-सी पाषाणी कठोरता है जो इनकी मूलाधार करुणा के स्पर्श से काँप नहीं उठती; सत्य और समूह की रक्षा के लिए विद्रोह की किस ज्वाला को इन्होंने अपनी त्यागमयी तपस्या की आँच नहीं दी—यह बता सकना कठिन है—

सजनि मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात
सजनि मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात!

केवल सात वर्ष की अवस्था में ही पूजा-आरती के समय माँ से सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत से मुग्ध होकर इन्होंने पद-रचना प्रारम्भ कर दी थी। काव्य की प्रथम रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ—'आओ प्यारे तारे आओ, मेरे आँगन में बिछ जाओ।' परन्तु इसके बाद की लिखी पूर्ण रचना ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति है।

प्रयाग पढ़ने आने के पहले से ही आप 'सरस्वती' पत्रिका से परिचित हो चुकी थीं। महाकवि गुप्तजी की रचनाएँ भी देख चुकी थीं। बोलने की भाषा में कविता लिखने की सुविधा इन्हें आकर्षित करने लगी थी। वस्तुतः इन्होंने 'मेघ बिना जल बृष्टि भई है' को खड़ी बोली में इस प्रकार रूपान्तरित कर दिया—

हाथी न अपनी सूँड में यदि नीर भर लाता अहो,
तो किस तरह बादल बिना जलवृष्टि हो सकती कहो?

'अहो', 'कहो' देखकर ब्रजभाषा-प्रेमी इनके पंडितजी ने कहा—'अरे ये यहाँ भी पहुँच गये!' उनका आशय गुप्तजी से था। परंतु इन्होंने इसे अनसुना कर दिया और ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली को अपना लिया। खड़ी बोली की पूर्ण रचना आपने आठ वर्ष की अवस्था में लिखी थी, जो 'दीपक' पर है।

इसी समय एक ऐसी घटना घटी जिसने महादेवीजी को इतना प्रभावित किया कि वे उस वेदना से कभी मुक्त नहीं हो सकीं। नौकर ने पत्नी को इतना पीटा कि वह लहू-लुहान होकर रोती-चिल्लाती जिज्जी के पास दौड़ आयी अन्यथा वह

उसे मार ही डालता। गर्भिणी स्त्री के लिए काम-काज का भारी बोझ और ऊपर से ऐसी मार ! जिज्जी ने सहानुभूति के साथ उसकी गाथा सुनी और नौकर को बहुत डाँटा-फटकारा। सब शांत हो जाने पर महादेवीजी ने कहा—'हाय, कितना पीटा है ! यह भी क्यों नहीं पीटती ?' जिज्जी ने सहज ही कह दिया—'आदमी मारे भी तो औरत कैसे हाथ उठा सकती है ?' 'और अगर तुमको बाबू इसी तरह मारें तो ?' 'ना, ना, बाबू ऐसा नहीं कर सकते। आर्यसमाजी होकर भी मेरे साथ सत्यनारायण की कथा सुनते हैं, बड़े अच्छे आदमी हैं। कोई-कोई आदमी दुष्ट होते हैं।' 'तो फिर इसने दुष्ट के साथ शादी क्यों की ?' 'पगली, शादी तो घर के बड़े-बूढ़े करते हैं, यह बेचारी क्या करे ? अब कोई उपाय नहीं।' इसके बाद थोड़ी देर तक एक-दूसरे को देखती रहीं, फिर जिज्जी ने जाने क्यों दीर्घ साँस ली और महादेवी जैसे अपने भीतर डूब गयीं।

वय के सामर्थ्य से कहीं अधिक आपने सातवें वर्ष से लेकर नवें वर्ष तक के बीच में हिंदी, उर्दू, संगीत और चित्रकला का अप्रत्याशित ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ब्रजभाषा के पद, कवित्त-सवैये की समस्यापूर्ति के साथ खड़ी बोली में भी कविताएँ लिखने लगी थीं। इसे संस्कारगत प्रतिभा की प्रबलता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? जिज्जी और बाबूजी ने भी बेटी की असाधारण बुद्धि और प्रतिभा की जन्मजात प्रखरता देखकर प्रोत्साहन देने में कभी कोई चूक नहीं की। आजीवन शिक्षा-संस्थाओं से सम्बद्ध रहने के कारण बाबूजी बच्चों की परख में पारंगत थे। पढ़ाई-लिखाई में पिताजी का प्रबुद्ध निरीक्षण-परीक्षण और उत्साहवर्द्धन तथा गृह-कार्य में माताजी की शिक्षा-दीक्षा ने मिलकर इन्हें दोनों क्षेत्रों में दक्ष कर दिया था। महादेवीजी ने इसका उल्लेख किया है—'एक ओर साधनापूत आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, किंतु किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थीं।'

इसी कारण एक सजग यथार्थवादी की तरह सोचने समझने और आस्थावान आदर्शवादी की तरह कार्य करने की इनकी अपनी एक प्रणाली है। समन्वय और सामंजस्य इनके जीवनक्रम के मलाधार हैं।

आश्चर्यजनक विलक्षणताओं का सहज समाहार, विविध विजातीय वर्गों से समान सम्बन्ध, विभिन्न वयस और विचार के व्यक्तियों से एकरस सहानुभूति, परस्पर-विरोधी नाना प्रकार के कार्यों को कर सकने की अद्‌भुत क्षमता, मोतियों की हाट और चिनगारियों का एकसाथ मेला लगाते चलने की अनन्य धुन आदि इनकी समन्वयशीलता के साक्षी हैं। काव्य में गम्भीर रहस्यवादी होकर भी जीवन में इतनी सहज, सरल तथा परानुभूतिशील, स्पष्ट और शिशु-वत कुतूहली होने का रहस्य भी यही है। उनकी ये पक्तियाँ भी यही कहती हैं—

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी,
आज जिस पर प्रलय विस्मित
मैं लगाती चल रही नित
मोतियों की हाट औ'—
चिनगारियों का एक मेला।

अभी तक आप छोटे खिलौने-विशेष के लिए बच्चों के साथ कलह-कोलाहल तक भी उतर आती हैं। चुन्नी का हाथी छीन लेना चाहती हैं, मुन्नी की गुड़िया छिपा लेने की ताक में रहती हैं। संपर्कित परिवार के बच्चे खिलौनों के विषय में इनसे सदा सतर्क रहते हैं। खिलौनों का इतना बड़ा संग्रह इनके पास है कि शायद ही किसी और के पास हो। रूसी कलाकारों ने आपको एक सुन्दर रूसी गुड़िया भेंट की, तो आपने प्रसन्नता में उन्हें अपनी दर्जनों गुड़ियों का संग्रह दिखाया। वे स्तब्ध रह गये। उनकी इस पंक्ति पर ध्यान दीजिए—

यह खिलौने और यह उर प्रिय नयी असमानता है

'क्षण में आँसू क्षण में हास' की उक्ति में भी बच्चों के साथ आपकी बाजी रहती है। मैंने देखा है कि महाप्राण निराला की मानसिक अवस्था से करुणार्द्र होकर आँसुओं के साथ उन्हें बिदा देते समय भी वे गुप्तजी का स्वागत मुक्त-हास के साथ करने में समर्थ हैं। पलकों में आँसू और ओठों में हास साथ ही सँजो रखने में वे अद्वितीय हैं।

नवाँ वर्ष पूरा होने को हुआ कि बाबा (पितामह) ने गुड़िया का ब्याह रचने की ठान ली। पके आम— बूढ़े होने के कारण वे अपनी महामहिम महादेवी का विवाह अपनी आँखों की छाया में ही कर देना चाहते थे। घर में उनकी इच्छा के

विरुद्ध कुछ कहने का किसीमें साहस नहीं था। बावा का हठ, उन्होंने न केवल ब्याह वरन् आगामी कई वर्षों तक साइत न बनने के कारण उसी समय एक सप्ताह के लिए बालिका की विदा भी कर दी। रोती-चिल्लाती बालिका की कातर वाणी कितनी हृदय-विदारक रही होगी, यह सहज ही अनुमेय है।

ससुराल (बरेली के पास कस्बा नवाबगंज) पहुँचकर महादेवीजी ने जो उत्पात मचाया उसे ससुरालवाले ही जानते होंगे। न खाना, न पीना, न बोलना, न कुछ सुनना, केवल रोना, रोना, बस रोना। आँखें सूज गयीं, ज्वर आ गया और उल्टी का ताँता बँध गया। सारे घर में एक आतंक छा गया। फलतः श्वसुर महोदय दूसरे दिन ही इन्हें वापस लौटा गये। श्वसुर लड़कियों की स्कूली पढ़ाई के नितान्त विरोधी थे। अतः इनकी पढ़ाई का क्रम टूट गया। इसे विधि का विधान ही कहा जायगा कि साल-भर के बाद ही श्वसुर का देहान्त हो गया।

महादेवीजी के लिए अब केवल एक ही प्रशस्त पथ था—पढ़ाई का। विद्यानुरागी बाबूजी ने भी यही उचित समझा और आगे पढ़ने के लिए इन्हें क्रास्थवेट कालेज, प्रयाग में भरती कर दिया। फिर क्या था, धड़ल्ले से पढ़ाई और काव्य-रचना चल पड़ी। मिडिल की परीक्षा आपने प्रथम श्रेणी में पास की और प्रांत-भर में प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति भी प्राप्त की। उसी समय सौ छन्दों का एक करुण खंडकाव्य भी लिख डाला। उस समय की अपनी साहित्यिक मनोभूमि का इन्होंने इस प्रकार उल्लेख किया है—'जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आयी, तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं। अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारतमाता', 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की थी वे विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिए लिखी गई थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया।' उस समय की 'अबला', 'विधवा' आदि रचनाएँ चाँद, आर्य महिला एवं महिला जगत् में प्रकाशित भी हुई थीं।

इसके पश्चात् महादेवीजी की काव्य-प्रवृत्ति उनकी मूलधारा की ओर उन्मुख हो गयी, 'जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गम्भीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। कहना नहीं होगा कि इस दिशा में मेरे मन को वही विश्राम मिला जो पक्षि-शावक को

कई बार गिर-उठकर अपने पंखों के सँभाल लेने पर मिलता होगा।' इस भाव की प्रथम रचना चाँद में प्रकाशित हुई। तब से रचनाक्रम अबाध रूप से चलता रहा और बहुत बाद में प्रकाशित इनकी प्रथम काव्य-कृति 'नीहार' का अधिकांश इनके मैट्रिक होने के पहले ही लिखा जा चुका था।

''नीहार' के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल-मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखायी देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।' वस्तुत: छायावाद और रहस्यकाव्य की विभाजक रेखा 'नीहार' से ही स्पष्ट होने लगती है। आधुनिक काव्य में आध्यात्मिक अभियान का यह प्रथम चरण है, क्योंकि रहस्य-साधना की खोज और इस पथ की पीड़ा का उभार 'नीहार' में स्पष्टत: लक्षित होता इस कृति का पहला गीत ही रहस्यकाव्य का साक्ष्य उपस्थित कर देता है—

गये तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान !
नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अँगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज
मिला लो यह स्फुट झंकार !

दसवाँ, ग्यारहवाँ दर्जा पास करते-करते कवि-सम्मेलनों, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में प्राप्त तमगों और पुरस्कारों से छात्रावास का कमरा भर गया। प्रचलित प्रसिद्ध पत्रिकाओं में रचनाएँ निरन्तर प्रकाशित होने लगीं और काव्य-मर्मज्ञों का ध्यान इस नवीन प्राञ्जल प्रतिभा की ओर उत्सुकता से आकर्षित होने लगा। इण्टर की विद्यार्थिनी के रूप में ही आपको आश्चर्यजनक ख्याति मिल चुकी थी। सन् २३, २४ में श्री इलाचन्द्र जोशी को अपने अल्पकालीन चाँद के सहकारी संपादक के रूप में महादेवी वर्मा के नाम से प्रकाशन के लिए आयी हुई कविता देखकर आश्चर्य के साथ जो सन्देह हुआ था उसका वर्णन उन्होंने 'संगम' के महादेवी अंक के अपने लेख 'जीवन-विजयिनी महादेवी' में रोचकता और विशदता के साथ किया है।

कालेज की विद्यार्थिनियों को नाटक खेलने के लिए आपने एक काव्य-रूपक की भी रचना की थी, जिसमें वसंत, फूल, भ्रमर, तितली तथा वायु को पात्र बनाया गया था। न जाने क्यों, आपने इस विधा को प्रश्रय नहीं दिया। कालेज की सभी छात्राएँ और अध्यापिकाएँ समान रूप से आपको सम्मान और स्नेह देती थीं। श्री सुभद्राकुमारी से प्रगाढ़ मैत्री की नींव भी यहीं पड़ी। कविवर पंतजी को हिन्दू-बोर्डिंग हाउस के कवि-सम्मेलन में उसी समय पहली बार देखा। उनके बड़े बाल और वेशभूषा-विन्यास के कारण उन्हें लड़की समझकर पुरुषों के बीच बैठने की ढिठाई पर मन ही मन रूष्ट भी हुई।

बी० ए० पास होते ही गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ। इस बार इन्होंने साफ शब्दों में दृढ़तापूर्वक, किन्तु सहज भाव से जिज्जी को बता दिया कि वे विवाह को किसी भी स्थिति में स्वीकार करने को तैयार नहीं और तब गौने की चर्चा ही व्यर्थ है। जिज्जी को यह निश्चय सुनकर स्वभावतः अत्यंत पीड़ा हुई और उन्होंने बहुत तरह से समझाया-बुझाया भी, पर महादेवीजी अपने निश्चय पर अटल रहीं। बाबूजी को भी बहुत दुःख हुआ और उन्होंने इन्हें एक लम्बे पत्र में अबोध बालिका के प्रति विवाह रूप में किये गये अन्याय की मुक्तकंठ से क्षमा माँगते हुए यह भी लिखा कि यदि इनकी इच्छा दूसरा विवाह करने की है तो वे इनके साथ धर्म-परिवर्तन करने को भी तैयार हैं। इन्होंने स्पष्ट कर दिया कि दूसरे विवाह की बात नहीं, वे विवाह करना ही नहीं चाहतीं। यदि पिछले कृत्य की ग्लानि छोड़कर उनके वर्तमान निश्चय को सहर्ष स्वीकार कर लिया जाय तो दोनों ही पक्ष पिछले पापों से मुक्त हो जाएँगे। बाबूजी ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। उसी समय से इस प्रसंग का अन्त हो गया।

उन दिनों भारतीय नारी के लिए विवाह को इस प्रकार अस्वीकार कर देना कितना कठिन और विस्मयकारी था, कहने की बात नहीं। बचपन से ही महादेवीजी का यह स्वभाव रहा है कि उन्होंने जो अपने जीवन-विकास के लिए उचित और उपयुक्त समझा सो किया, हठ और भीषण विद्रोह के साथ किया। संसार का कोई भी प्रलोभन या भय उन्हें अपने पथ से विमुख नहीं कर सका—

> घिरती रहे रात !
> न पथ रूँधतीं ये गहनतम शिलायें,
> न गति रोक पातीं पिघल मिल दिशायें;

चली मुक्त मैं ज्यों मलय की मधुर वात !
न आँसू गिने औ' न काँटे सँजोये,
न पग-चाप दिग्भ्रान्त उच्छ्वास खोये;
मुझे भेंटता हर पलक-पात में प्रात !

विवाहित जीवन अस्वीकार करने की बात को लेकर कतिपय फ्रायड-भक्तों और भक्तिनियों ने, जिनका संयम और साधना पर विश्वास नहीं है, महादेवीजी के प्रति मनमाने अनुमान आरोपित करते हुए उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में इसकी प्रतिक्रिया का प्रतिफलन देखने की हास्यास्पद चेष्टा की है। वैवाहिक जीवन अस्वीकार करने के मूल में भारतीय नारी की युग-युगों से चली आती हुई वह दयनीय दशा, जिसका उल्लेख अपने सामाजिक निबन्धों में महादेवीजी ने बारंबार आक्रोप और क्षोभपूर्ण शब्दों में किया है तथा उनकी सहज वैराग्य-भावना भी हो सकती है। इस सहज स्वाभाविक सत्य को न स्वीकार कर सकने का मनोवैज्ञानिक कारण हमें महादेवीजी में न खोजकर अपने में ही खोजना चाहिए। बौद्ध भिक्षुणी बनने की उनकी इच्छा से भी विवाह की अस्वीकृति का समर्थन होता है। इसके अतिरिक्त पुरुष-निरपेक्ष नारी-व्यक्तित्व की स्थापना का उनका जीवन-व्यापी उद्देश्य भी इस प्रवृत्ति में सक्रिय रहा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। अनुमान से अधिक महत्त्व स्वयं उनके स्पष्ट कथन को न देकर हम अपने को ही लांछित करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनके इस कथन पर ध्यान दीजिए—'मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था। कविता सबसे बड़ा परिग्रह है, क्योंकि वह विश्व-मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है।'

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके इन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर इनका जैसा विशाल परिवार-पोषण सबके वश की बात नहीं। गाय, हरिण, कुत्ते, बिल्लियाँ, गिलहरी, खरगोश, मोर, कबूतर तो इनके चिरसंगी हैं ही, लता-पादप-पुष्प आदि तक इनकी पारिवारिक ममता के समान अधिकारी हैं। आगंतुक और यदि वह अतिथि हो, तो उसके स्वागत की इनकी तन्मयता देखने लायक होती है। विशाल साहित्यिक परिवार में से प्रयाग आनेवाले साहित्यिकों के लिए तो इनका निवास घर ही सा है, पर असाहित्यिकों के लिए भी उनका द्वार मुक्त रहता है। गुप्तजी ने ठीक ही कहा था—'मेरी प्रयाग-यात्रा केवल संगम-स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिए मुझे सरस्वती

(महादेवी) के दर्शनों के लिए प्रयाग महिला विद्यापीठ जाना पड़ता है। संगम में कुछ फूल-अक्षत भी चढ़ाना पड़ता है, पर सरस्वती के मंदिर में कुछ प्रसाद मिलता है। साहित्यकार संसद हिन्दी के लिए उन्हींका प्रसाद है।'

(१) प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० करने के पश्चात् इन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल कार्य समझकर प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का भार ग्रहण कर लिया और चाँद का निःशुल्क संपादन भी करने लगीं। अब तक उनकी द्वितीय काव्यकृति 'रश्मि' भी प्रकाशित हो चुकी थी। 'रश्मि' में उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों को दर्शन का दृढ़ आधार मिल जाता है और 'नीहार' का धुँधलापन निखर उठता है। जिज्ञासा और कौतूहल की अधिकता इसमें भी है, पर इसके समाधान दृढ़ और अडिग हैं। 'रश्मि' की प्रकृति विस्मय की सृष्टि करनेवाली न होकर कवि-व्यक्तित्व-सापेक्ष हो जाती है। इस कृति का आह्लादात्मक बोध वेदना को माधुर्य-मंडित करने में सक्षम है। इसकी रहस्यानुभूतियाँ स्पष्ट और साधना-समर्थित हैं। भावुकता प्रौढ़ दार्शनिकता में बदल गई है। अज्ञात का आकर्षण ज्यों का त्यों बना है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति के विभिन्न स्वरों में सामञ्जस्य की गरिमा बढ़ गयी है। जीवन, मृत्यु, मुक्ति, अमरत्व, प्रकृति और मानव आदि की द्वन्द्वात्मक स्थितियों में साम्य का सूत्र संग्रथित हो गया है और भाषा भावाभिव्यक्ति में अधिक सफल और सघन हो गयी है। इस कृति में वेदान्त और बौद्धदर्शन का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु कवयित्री ने अपने स्वतंत्र चिंतन को अक्षुण्ण रखा है। बौद्धदर्शन की मूल प्रवृत्ति व्यक्तित्व की सर्वांशतः निर्विशेषता को इन्होंने कहीं स्वीकार नहीं किया—'पर न समझना देव हमारी लघुता है जीवन की हार।' इसी तरह उपनिषद् के सुख-दुःख-समन्वय को साधना का स्वरूप न मानकर दोनों को व्यापक सत्य के अंग रूप में स्वीकार किया है—

छिपाकर उर में निकट प्रभात,
गहनतम होती पिछली रात,
सघन वारिद अम्बर से छूट,
सफल होते जल-कण में फूट।

वस्तुतः 'रश्मि' में सर्ववाद-दर्शन की भावात्मक अथवा सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का प्राचुर्य है। आत्मा, प्रकृति और परमात्मा (ब्रह्म) की अन्तर्हित एकता ही 'रश्मि' का मूलाधार है।

कविता के साथ-साथ बचपन से ही इन्होंने गद्य लिखना भी प्रारम्भ कर दिया था। और 'पर्दा-प्रथा' पर लिखित निबंध-प्रतियोगिता में उत्तरप्रदेश शिक्षा-विभाग से पुरस्कृत भी हो चुकी थीं। 'भारतीय नारी' नामक नाटक भी कई जगह अभिनीत हो चुका था, कतिपय संस्मरण भी लिखे जा चुके थे, परन्तु चाँद के सम्पादकीय रूप में लिखित गद्य अपना एक अलग महत्त्व रखता है। उपेक्षित प्राणियों में नारी का स्थान शीर्षस्थ है। महादेवीजी के लिए यह स्वाभाविक था कि इस वर्ग के प्रति किये गये अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध वे आवाज़ उठातीं। इन निबंधों में इन्होंने भारतीय नारी की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का एक समाजशास्त्री की भाँति अत्यंत गहन विश्लेषण-विवेचन किया है। 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक कृति में ये निबंध संगृहीत हैं। इन निबंधों में महादेवीजी ने जिस क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है, वह बड़े से बड़े समाज-सुधारक में भी विरल है। सामान्य नारी की स्थिति का विश्लेषण करते हुए इन्होंने विधवाओं, वेश्याओं और अवैध सन्तानों की समस्या पर भी अपने साहसी और निर्भीक विचार व्यक्त किये हैं—'अनेक व्यक्तियों का विचार है कि यदि कन्याओं को स्वावलम्बी बना देंगे तो वे विवाह ही न करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ धर्म में भी अराजकता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होनी चाहिए, आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।'

'नीरजा' इनके काव्य-संचरण का तीसरा सोपान है। इसमें अनुभूति के उत्कर्ष और कलात्मक मनोरमता के साथ हिन्दी गीति-काव्य अपने चरम विकास की भूमिका पर प्रतिष्ठित हो जाता है। गीतों की दृष्टि से 'नीरजा' हिन्दी की श्रेष्ठतम रचना है। छायावाद के दुर्वासा आलोचक आचार्य शुक्ल को भी इनके गीतों की सफलता को अनन्य मानना पड़ा था। 'नीरजा' में चिंतन और अनुभूति, भाव और अभिव्यक्ति तथा गीत और संगीत का बहुत ही उत्कृष्ट समन्वय पाया जाता है। 'रश्मि' की किरण-चेतना का आरोहणक्रम 'नीरजा' में समात्मभाव के उस शिखर पर पहुँच जाता है, जो इनके काव्य की प्रतिष्ठाभूमि और आध्यात्मिक उन्मेष का प्रतीक है। आत्मभाव–'सोऽहं,' सर्वात्मभाव–'तत्त्वमसि' तथा समात्मभाव–'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की स्थितियाँ नीरजा' में समाहित हैं। जीवननिष्ठा, आध्यात्मिक आस्था और व्यापक सौन्दर्यबोध के माध्यम से महादेवीजी ने 'नीरजा' के गीतों में

जिस समात्मभाव की रहस्यात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त किया है, वह कलात्मक रूप से छायावाद और भावात्मक रूप से रहस्यकाव्य का प्रतिनिधित्व करने में सहज ही सफल और सार्थक है—

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
सघन वेदना के तम में सुधि जाती सुख सोने के कण भर,
सुरधनु नव रचती निश्वासें स्मित का इन भीगे अधरों पर;
आज आँसुओं के कोषों पर स्वप्न बने पहरे वाले हैं।
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रही कैसी उलझन ?
रोम-रोम में होता री सखि एक नया उर का-सा स्पन्दन,
पुलकों से भर फूल बन गये जितने प्राणों के छाले हैं।

आन्तरिक और बाह्य संसार में सभी जगह आत्ममिलन के संकेत मिल रहे हैं। वेदना के अंधकार में स्मृति प्रकाश भर रही है। भीगे ओठों पर निश्वासें स्मित का इन्द्रधनुष बना जाती हैं। आँसुओं के कोष पर सपनों का पहरा लग गया है। नेत्र और कान एक-से हो गये हैं—प्रिय को देखने और उसकी बातें सुनने की समान आकुलता है। रोम-रोम में हृदय की उत्सुकता धड़क रही है। प्राणों के सारे दुःख पुलक के कारण फूल की तरह उत्फुल्ल हो उठे हैं। 'नीरजा' की यही विशेषता है। वास्तव में 'नीरजा' जैसा कलापक्ष और भावपक्ष का समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है।

(५) इनकी चौथी काव्य-कृति 'सांध्यगीत' है। 'नीरजा' के भाव-विस्तार के साथ इस कृति की अनुभूत तन्मयता अधिक सघन और व्यापक हो गयी है। विरह के अभिशाप को इन्होंने वरदान के रूप में रूपान्तरित कर लिया है। उनका भाव-पथ निश्चित हो चुका है और कवयित्री ने अपनी निश्चित दिशा खोज ली है। सापेक्षताओं से ऊपर उठने के कारण वे इतनी निर्द्वंद्व हो गयी हैं कि उनके लिए और तो और जीवन-मृत्यु का पार्थक्य भी मिट गया है—

चाँदनी मेरी अमा का भेंटकर अभिषेक करती,
मृत्यु-जीवन के पुलिन दो आज जागृति एक करती,
हो गया अब दूत प्रिय का प्राण का सन्देश-स्पन्दन।

सजनि मैंने स्वर्ण पिंजर में प्रलय का वात पाला,
आज पुंजीभूत तम को कर वना डाला उजाला,
तूल से उर में समाकर हो रही नित ज्वाल चंदन।

अस्तु अब उनके लिए—

'विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधु की यामिनी सी'

वस्तुत: समन्वय, सामञ्जस्य और सापेक्षताओं से ऊपर उठने का भावयोग 'सान्ध्यगीत' की चरम उपलब्धि है। इस गीत की ध्वनि से इस स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है—

मैं सजग चिर साधना ले।
सजग प्रहरी से निरन्तर
जागते अलि रोम निर्भर,
निमिष के वुदबुद मिटाकर,
एक रस है समय सागर।
हो गयी आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले।
विरह का युग आज दीखा मिलन के लवु पल सरीखा,
दुःख सुख में कौन तीखा मैं न जानी औ' न सीखा,
मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना ले।

इस कृति के साथ कवयित्री का चित्रकर्त्री रूप भी सामने आया। इस प्रकार 'सान्ध्यगीत' काव्य, संगीत और चित्र के समन्वित स्वरूप से आलोकित है।

पाँचवीं काव्य-कृति 'दीपशिखा' को काव्यमय चित्र या चित्रमय काव्य अथवा 'चित्रगीत' की संज्ञा दी जा सकती है। इसके प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि के रूप में एक चित्र अंकित है, जो काव्योत्कर्ष की चारुता बढ़ाने में समर्थ है। कला और भाव दोनों की दृष्टि से 'दीपशिखा' पूर्णत्व का स्पर्श करती हुई अपने ढंग की अकेली काव्य-कृति है। इसे देखने के पश्चात् ही निरालाजी ने अपने ये उद्गार प्रकट किये थे—

हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणा-वाणी,
स्फूर्ति-चेतना-रचना की प्रतिमा कल्याणी!

'दीपशिखा' में महादेवीजी की समात्मभावना रागात्मक अनुभूति की तीव्रता से सर्वव्यापक होकर इतनी प्रत्यक्ष और जीवन्त हो उठती है कि सर्वभूतहितरत

क्रियाओं में उसका स्वरूप परिलक्षित होने लगता है। भाव, क्रिया और बोध का यही समन्वय अध्यात्म की चरम परिणति और काव्य की उच्चतम उपलब्धि है। 'दीपशिखा' का प्रारम्भ ही लोक-मंगल की भावना से होता है—

दीप मेरे जल अकम्पित घुल अचंचल।
पथ न भूले, एक पग भी, घर न खोये, लघु विहग भी
स्निग्ध लौ की तूलिका से आँक सबकी छाँह उज्ज्वल।

और अपनी इस वृत्ति के लिए—निष्काम कर्मयोग की साधना के लिए अपेक्षित आत्मविश्वास का दृढ़ सम्बल भी इनके पास है—

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।
अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे;
दृढ़व्रती निर्माग उन्मद, यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अक-संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।

इस प्रकार साधना-सिद्ध आत्मविश्वास का सहज सम्बल 'दीपशिखा' को प्राप्त है। कवयित्री ने स्पष्ट घोषणा भी की है—

और कहेंगे मुक्ति-कहानी, मैंने धूलि व्यथा भर जानी;
हर कण को छू प्राण पुलक बन्धन में बँध जाता है।
मिलन उत्सव बन क्षण जाता है।
मुझे प्रिय जग अपना भाता है!

कहना न होगा कि समत्व की यह स्थिति सर्वत्र एक ही आत्मा को देखने की दृष्टि का ही सुफल है। द्वन्द्वमोहविनिर्मुक्त होने से व्यष्टि जीव का विश्वात्मा के प्रति प्रेमभाव उजागर हो सकता है, अन्यथा नहीं। वास्तव में आध्यात्मिक आलोक की सार्थकता यही है कि वह विश्व के लिए करुणा, सहानुभूति ही नहीं, समानुभूति तथा स्नेह का सन्देश दे सके, क्योंकि उच्च से उच्च आदर्श भी जीवन के यथार्थ से समन्वित होकर ही प्रतिष्ठा पाता है। इस सार्वभौम प्रेम और समत्व की प्राप्ति के लिए अपने प्राकृत अहं की चहारदीवारी को तोड़ना और अपरा प्रकृति से उठकर परा प्रकृति में प्रवेश करना अनिवार्य है, केवल तभी सर्वभूतों के प्रति मैत्री और करुणा का भाव जागृत हो सकता है। 'दीपशिखा' की कवयित्री 'अपने से पहले अपनों की मुक्ति गौतमी गीता' के अनुसार अपने लिए व्यक्तिगत

सुख से पूर्व विश्व को सुखी देखना चाहती हैं, सबका दुःख बँटाने के लिए आतुर हैं और इसीको कवि का मोक्ष मानती हैं। महादेवीजी अपनी इस विराट संवेदन-शीलता के उन्मेष में लोक-कल्याण की भावना को व्यक्तिगत मोक्ष से कई गुना अधिक महत्त्व देती जान पड़ती हैं। वे विश्व से विषाद, क्लेश और ताप को दूर करके उल्लास, आनंद और शीतलता की रचना करने को उत्सुक हैं—'मैं उन मुरझाए फूलों पर सन्ध्या के रंग जमा जाती', 'मैं पथ के संगी शूलों के सौरभ के पंख लगा जाती', अपने को गलाकर पृथ्वी को शीतलता देनेवाले 'उस घन की हर कम्पन पर मैं शत-शत निर्वाण लुटा जाती', अपने बाह्य पाषाणी रूप के भीतर करुणा का अक्षय जलस्रोत सँजोने वाले पहाड़ को भी, 'मैं ढाल चाँदनी में मधुरस गिरि का मृदु प्राण बता जाती', केवल इतना ही नहीं यदि कवयित्री में क्षमता होती तो वह विश्व को इतना रम्य, साधनापीठ और आनन्दधाम बना जाती कि इसका स्रष्टा भी इसके प्रति आकर्षित हो उठता—

सुधि विद्युत की तूली लेकर
मृदु मोम फलक-सा उर उन्मन
मैं घोल अश्रु में ज्वाला-कण
चिर मुक्त तुम्हीं को जीवन के
बन्धन हित विकल दिखा जाती।

गोस्वामी तुलसीदास ने लोक-मंगल की भावना के जिस बल पर आत्म-विश्वास के साथ कहा था—सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, रामचरितमानस कवि तुलसी। उसी अकम्प विश्वास के साथ महादेवी ने भी कहा है—

विद्युत घन में बुझने आती, ज्वाला सागर में घुल जाती
मैं अपने आँसू में बुझ घुल, देती आलोक विशेष रही।
जो ज्वारों में पल कर, न बहें अंगार चुगें जलजात रहें,
मैं गत-आगत के चिरसंगी सपनों का कर उन्मेष रही।

इसलिए 'दीपशिखा' में अविश्वास का कोई कम्पन नहीं है। नवीन प्रभात के वैतालिकों के स्वर के साथ इसका स्थान रहे, ऐसी कामना नहीं, पर रात की सघनता को इसकी लौ झेल सके, यह इच्छा तो स्वाभाविक है। वस्तुतः व्यापक और स्थिर समता, निष्कामता, लोक-मंगल की भावना और आत्मा के स्वातंत्र्य की माँग 'दीपशिखा' का प्रमुख प्रतिपाद्य है—

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला।
जिसने उसको ज्वाला सौंपी उसने इसमें मकरन्द भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल देता झर यह सौरभ बिखरा;
दोनों संगी पथ एक किन्तु कब दीप खिला कब फूल जला ?

इस गीत में प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में स्थित रूप, आकार और कार्य से नितांत भिन्न पदार्थों को चुनकर तथा उन सबको एक ही पथ के पथिक और एक ही मूल चेतन की अभिव्यक्ति मानकर कवयित्री ने बाह्य भिन्नता के भीतर निहित अभिन्नता की बहुत ही मार्मिक अभिव्यञ्जना की है। वस्तुतः किसीको बड़ा-छोटा, कोमल-कठोर, ऊँचा-नीचा तथा लघु-विराट समझना हमारे व्यष्टि भाव का बुद्धिविभ्रम-मात्र है, अन्यथा सभी उस परममूल तत्त्व की सृष्टि हैं और उसी-की आभा से उद्भासित हैं। इस प्रकार ब्रह्म और जीवात्मा तथा प्रकृति अभिन्न हैं। एक ही चैतन्य कहीं दीप बनकर जल रहा है तो कहीं फूल बनकर खिल रहा है। दोनों का लोक-मंगल के लिए उत्सर्ग समान है। इसी भावोदय के उल्लास में ये पंक्तियाँ मुखरित हो उठी हैं—

लघु हृदय तुम्हारा अमर छन्द, स्पन्दन में स्वर-लहरी अमन्द,
हर स्वप्न स्नेह का चिर निबन्ध, हर पुलक तुम्हारा भाव-बन्ध
निज साँस तुम्हारी रचना का लगती अखण्ड विस्तार मुझे।

स्पष्ट है कि 'दीपशिखा' में आध्यात्मिक साधना के विभिन्न सोपानों पर चढ़ती हुई कवयित्री ने सिद्धि की उस उच्चतम स्थिति का आकलन और अनुभव कर लिया है, जहाँ जीवात्मा निम्नतर वैयक्तिक स्तर के अहंभाव से ऊपर उठकर सर्वव्यापी आत्मा की निर्वैयक्तिक समस्थिति में विकसित होकर परमसत्ता के साथ चेतना और दिव्य आनंद में भावात्मक एकता स्थापित करते हुए असीम प्रेम और चरम स्वातंत्र्य का लाभ प्राप्त करती है। मानवीय जीवन की चरम सफलता और उसकी सर्जनात्मकता का यही परम विकास है।

साधना की सिद्धि का संकेत इन पंक्तियों में चरितार्थ है—

सजल है कितना सवेरा !
कल्पना निज देखकर साकार होते,
और उसमें प्राण का संचार होते,
सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा !

ले उषा ने किरण-अक्षत हास-रोली,
रात अंकों से पराजय-रेख धो ली,
राग ने फिर साँस का संसार घेरा !

महादेवीजी के चित्रों के विषय में कुछ अधिक कहने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि गीतों की पृष्ठभूमि के रूप में अंकित उनके चित्र भावों को मूर्तित करने में पूर्णतः सफल हैं। गीतों की भाव-व्यञ्जना के सहयोगी होने के कारण ये चित्र स्वभावतः वस्तुपरक होने की अपेक्षा भावात्मक अधिक हो गये हैं, यह भी सच है। उदाहरणस्वरूप—'आँसू से धो आज इन्हीं अभिशापों को वर कर जाऊँगी' वाला चित्रगीत लिया जा सकता है। चित्र में एक स्त्री के दोनों हाथ काँटों से बँधे हैं और अँगुलियों में अविकसित, अर्धविकसित कमल के फूल अपनी नाल के साथ लिपटे बने हैं। अपने ऊपर आपदाओं का बोझ रखकर भी दूसरे के सुख-स्वागत का भाव ही चित्र और गीत का प्रतिपाद्य है। अपनी तपन-तपस्या और त्याग से दूसरों को सुखी बनाने की कामना ही दोनों के साम्य का आधार है। किसी भी चित्रगीत को लेकर यह भाव-साम्य स्पष्ट किया जा सकता है।

अभी तक महादेवीजी की चित्रकला पर सम्यक् समालोचन का प्रायः अभाव है, परन्तु जब कभी इस ओर कलाविदों का ध्यान आकर्षित होगा, तब भारतीय संस्कृति की दृष्टि से इन चित्रों का महत्त्व स्पष्ट होकर सामने आयेगा, यह निश्चित जान पड़ता है। अपने चित्रों की चर्चा करते हुए इन्होंने चित्रकला की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वे अधिकतर इनके चित्रों में समाविष्ट हैं। वस्तुतः वे एक सफल चित्रकर्त्री भी हैं।

वास्तव में महादेवीजी की भाव-चेतना इतनी गंभीर, मार्मिक और संवेदनशील है कि उसकी अभिव्यक्ति का प्रत्येक रूप नितान्त मौलिक और हृदयग्राही शैली की स्थापना करने में स्वभावतः सफल होता है। साहित्यकार, चित्रकार तथा मूर्तिकार होने के साथ ही वे एक अत्यंत प्रभावशाली व्याख्याता और समाजसेविका भी हैं। इनके भाषणों को सुननेवाले श्रोताओं को यह भली भाँति ज्ञात है कि उन्हें भाव-विभोर कर देने की क्षमता में महादेवीजी अद्वितीय हैं। विषय को सुननेवालों के लिए इतना संवेदनीय बना देती हैं कि वे इनके शब्दों को अपने संवेदनों से मिलाते हुए इनके साथ परम आत्मीय भाव से बहते चले जाते हैं।

वक्ता और श्रोता का भाव-स्पंदन एक ही लय में लयमान हो जाता है। वक्ता और श्रोता का ऐसा तादात्म्य-स्थापन भाषण-कला की चरम परिणति है। महादेवीजी ऐसी ही समर्थ व्याख्याता हैं।

अपने साहित्यिक और सामाजिक कार्यों के साथ वे देश के स्वतंत्रता-आन्दोलन में भी निरन्तर यथायोग्य सहयोग देती रही हैं। सन् १९४२ के स्वतंत्रता-संग्राम में इन्होंने जिस अडिग धैर्य और अटूट साहस के साथ विद्रोहियों का साथ दिया है, उनकी सहायता की है, उनको और उनके परिवार को संरक्षण दिया है, वह बहुत ही रोमांचकारी और आश्चर्यजनक है। उन्हीं दिनों की एक घटना-विशेष से परिचित होकर श्री इलाचन्द्रजी जोशी ने कहा था—'आजकल सरकार का रुख बहुत कड़ा है। किंचिन्मात्र सन्देह होने पर पुलिसवाले बहुत परेशान करते हैं। स्थिति महिलाओं के लिए और भी अधिक भयावह है। आपको बहुत सावधान रहना चाहिए।' 'यह सब तो मैं जानती हूँ, पर विश्वास और आशा से आये हुए देश-प्रेमी विद्रोही को सहानुभूति और संरक्षण देने से इंकार भी तो नहीं किया जा सकता। इस समय देश को बहुत बड़े बलिदान और त्याग की आवश्यकता है। पुलिसवाले हमें जीवित तो पकड़ नहीं सकते, और यथाशक्ति काम तो करना ही है। राक्षसी परिपीड़न का भय हमको नहीं है, क्योंकि हम जौहर व्रत के सच्चे अधिकारी हैं।' हम लोग केवल स्तब्ध थे।

बंगाल के अकाल के समय 'बंगदर्शन' और चीनी आक्रमण के समय 'हिमालय' काव्य-संकलन और प्रकाशन इनकी राष्ट्रसेवा के ही ज्वलंत अनुष्ठान हैं। 'बंगदर्शन' की अपनी बात में महादेवीजी ने लिखा था—'किसी अन्य देश में यह घटना घटित होती तो क्या होता इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। परन्तु हमारा देश इसे अदृष्ट का लेख मानकर स्वीकार कर ले तो स्वाभाविक ही कहा जायगा। फिर भी प्रत्येक विचारक जानता है कि यह आकस्मिक वज्रपात नहीं है, जिसका कारण दुर्दैव या संयोग मानकर जिज्ञासा विराम पा सके। यह तो मनुष्य के स्वार्थ की शिला पर उसके प्रयत्न और बुद्धि द्वारा निर्मित नरक है। अतः इसका कारण ढूँढ़ने दूर न जाना होगा। इस दुर्भिक्ष की ज्वाला का स्पर्श करके हमारे कलाकारों की लेखनी-तूली यदि स्वर्ण न बन सकी तो उसे राख हो जाना पड़ेगा।' हिमालय का समर्पण इस प्रकार है—'जिन्होंने अपनी मुक्ति की खोज में नहीं, वरन् भारत-भूमि को मुक्त रखने के लिए अपने स्वप्न समर्पित किये हैं, जो अपना सन्ताप दूर

करने के लिए नहीं, वरन् भारत की जीवन-ऊष्मा को सुरक्षित रखने के लिए हिम में गले हैं, जो आज हिमालय में मिलकर धरती के लिए हिमालय बन गये हैं, उन्हीं भारतीय वीरों की पुण्यस्मृति में' और इस संग्रह के विषय में इन्होंने लिखा है—'इतिहास ने अनेक बार प्रमाणित किया है कि जो मानव-समूह अपनी धरती से जिस सीमा तक तादात्म्य कर सका है, वह उसी सीमा तक अपनी धरती पर अपराजेय रहा है। इस तादात्म्य के अनेक साधनों में विशिष्ट साहित्य है। किसी भूमिखण्ड पर किस मानव-समूह का सहज अधिकार है, इसे जानने का पूर्णतम प्रमाण उसका साहित्य है। आधुनिक युग के साहित्यकारों को भी अपने रागात्मक उत्तराधिकार का बोध था, इसीसे हिमालय के आसन्न संकट ने उनकी लेखनी को ओज के शंख और आस्था की वंशी के स्वर दिये हैं।'

अन्याय की दुर्दमनीय स्थितियों के प्रति मन में विद्रोह स्वाभाविक है, पर उसे क्रियात्मक रूप देने की क्षमता जिस अपराजेय आत्मदान की अपेक्षा रखती है, वह महादेवीजी की निजी विशेषता है। वस्तुतः मैथिली की अग्निपरीक्षा, बुद्ध का गृहत्याग और महादेवी का विद्रोह सत्य को सुन्दर और सुन्दर को शिव बनाने की ऊर्ध्वगामी सीढ़ियाँ हैं, जिनके द्वारा राग-द्वेष से मुक्त होकर मनुष्य जीवन की उच्चतम भूमि पर चढ़ सकता है। इनके विद्रोह में आग की लपटों का उच्छ्वसित आवेग नहीं, दीपक की लौ की आलोकवाही स्निग्धता है, चमत्कारी बुद्धि का उतावलापन नहीं, भावावेश को स्पंदित कर देने वाली हार्दिकता का विश्वास है, संकोच, संदेह तथा भय-पराजय का भाव नहीं, विजयी की वह विनम्रता और उदारता है, जिसपर साधना का पानी चढ़ा हुआ है। आशय यह कि विद्रोह की मंगलमुखी भावना पर ही इनकी आस्था है।

इनकी काव्य-रचना का क्रम अटट है, 'दीपशिखा' की भांति 'प्रभा' चित्र-गीत-कृति पूर्ण हो चुकी है, पर अभी प्रकाशित नहीं हुई। कतिपय गद्य-कृतियाँ अवश्य प्रकाशित हुई हैं। इन्होंने लिखा भी है—'जीवन की दृष्टि से मैं बहुधंधी हूँ, अतः एकान्त काव्य-साधना का प्रश्न उठाना ही व्यर्थ होगा। साधारणतः मुझे भाव, विचार और कर्म का सौन्दर्य समान रूप से आकर्षित करता है, इसीसे किसी एक में जीवन की पूर्णता पा लेना मेरे लिए सहज नहीं। भाव और विचार जगत् की सब सीमाएँ न छू सकने पर भी मेरे कर्मक्षेत्र की विविधता कम सारवती नहीं। साहित्य मेरे सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं है, यह स्वीकार करने

में मुझे लज्जा नहीं। हमारे जीवन का धरातल इतना विषम है कि एक पर्वत के शिखर पर बोलता है और दूसरा कूप की अतल गहराई में सुनता है। इस मानव समष्टि में, जिसमें शत-प्रतिशत असाक्षर और एक प्रतिशत से भी कम काव्य-मर्मज्ञ हैं, हमारा बौद्धिक निरूपण कुंठित और कलागत सृष्टि पंखहीन है। शेष के पास हम अपनी प्रसाधित कलात्मकता और बौद्धिक ऐश्वर्य छोड़कर व्यक्तिमात्र होकर ही पहुँच सकते हैं। बाहर के वैषम्य और संघर्ष में थकित मेरे जीवन को जिन क्षणों में विश्राम मिलता है, उन्हींको कलात्मक कलेवर में स्थिर कर मैं समय-समय पर उनके पास पहुँचाती रही हूँ, जिनके निकट उनका कुछ मूल्य है। शेष जीवन को जहाँ देने की आवश्यकता है, वहाँ उसे देने में मेरा मन कभी कुंठित न होगा।

'विशाल साहित्य-परिवार के हर्ष-शोक मेरे अपने हैं, परन्तु उससे बाहर खड़े व्यक्तियों की सुख-दुःख-कथा मुझे परायी नहीं लगती। अपने सुशिक्षित-सुसंस्कृत विद्यार्थियों से साहित्यालोचन करके मुझे प्रसन्नता होती है, परन्तु अपने मलिन दुर्बल जिज्ञासुओं (गँवई गाँव के बच्चों) को वर्णमाला पढ़ाने में मुझे कम सुख नहीं मिलता। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने उस उपेक्षित संसार में बहुत कुछ भव्य पाया है, अन्यथा सभ्य समाज से इतनी दूरी असह्य हो जाती। अनेक बार लोकगीत सुनकर ऐसा भी लगा है कि यह भाव मेरे गीत में होता। एक बहुत बड़े मानव-समूह को हमने ऐसी दुर्दशा में रख छोड़ा है जहाँ साहित्य का प्रवेश कल्पना की वस्तु है। वह समाज हृदय की बात समझता है, पर व्यक्ति के माध्यम से। ऐसे समाज में काव्य पहुँचाने से अधिक महत्त्व का प्रश्न मनुष्य पहुँचाना है, जो अपनी सहज संवेदना से उनके हृदय तक पहुँचकर बुद्धि की खोज-खबर ले सके।'

इस प्रकार साहित्य-सृजन के अतिरिक्त सामाजिक तथा राष्ट्रीय कार्य-क्षेत्र में भी इन्होंने बराबर सक्रिय भाग लिया है। महिला विद्यापीठ, साहित्यकार संसद, रंगवाणी आदि संस्थाओं की स्थापना और सम्वर्द्धना के साथ सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को एक रंगमंच पर एकत्रित करने का सर्वप्रथम श्रेय इन्हींको प्राप्त है। ग्रामीण जीवन के साथ निकट-सम्पर्क रखकर इन्होंने वहाँ के लोगों को शिक्षित करने की चेष्टा के साथ उनके सुख-दुःख में भी हाथ बँटाया है।

इनके संस्मरण-समन्वित रेखाचित्र जो 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' में संगृहीत हैं, इस सत्य के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। महादेवीजी ने इन रेखा-

चित्रों में किसी नेता, ऐतिहासिक व्यक्ति या किसी महान स्त्री-पुरुष को न लेकर समाज के विपन्न, अनाथ, अछूत, अशिक्षित तथा निम्नवर्ग के शोषित पात्रों को ही चित्रित किया है। निबंध, कहानी और संस्मरण तीनों की विशेषताओं का इसमें एकसाथ ही आनंद मिल जाता है।

'पथ के साथी' के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में इन्होंने अपने समकालीन कवियों के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं प्रभावों और मनोभूमियों को स्पष्ट करने के साथ-साथ अपने और उनके बीच के आत्मीय सम्बन्धों का भी उल्लेख किया है। संस्मरण, कल्पना और समालोचना की त्रिवेणी का यह साहित्यिक संगम सभी-को अपनी सरस स्निग्धता के साथ आत्मीयता के सागर तक पहुँचा देता है।

'शृंखला की कड़ियाँ' के सामाजिक निबंधों के अतिरिक्त इन्होंने महत्त्वपूर्ण विवेचनात्मक तथा ललित निबंध भी लिखे हैं, जो क्रमशः 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' और 'क्षणदा' में संकलित हैं। 'कसौटी पर' शीर्षक निबंध अभी अप्रकाशित हैं। विवेचनात्मक निबंधों में युगीन साहित्य-वृत्तियों का विश्लेषण करते हुए भी इन्होंने सनातन साहित्यिक मूल्यों का निर्देश देकर साहित्य के स्थायी मानदण्डों का ही निष्पक्ष निरूपण किया है। युगीन समीक्षा को भी प्रेरित और प्रभावित करने में इनकी समीक्षा सफल रही है। विशेपता यह है कि काव्य-कला के साथ अन्य सहोदरा ललित कलाओं के विषय में भी इनका विवेचन विश्वसनीय एवं मार्मिक है।

ललित निबन्धों में महादेवीजी ने उक्ति-वैचित्र्य, सूक्त-कथन तथा लक्षणा-व्यन्जना एवं हृदय-ग्राह्य जिस सरस चित्रमयी अलंकृत शैली का सूत्रपात किया है, वह बहुत ही प्रभावोत्पादक और उदात्त है।

उत्कृष्ट मौलिक सृजन के साथ इन्होंने अनुवाद का भी बहुत बड़ा कार्य किया है। काव्यमयी वैदिक ऋचाओं से लेकर वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति एवं जयदेव की उदात्त-सरस काव्य-विभूतियों का काव्यमय हिन्दी रूपान्तर 'सप्तपर्णा' में प्रकाशित हुआ है, परन्तु अभी तक अनुवाद का अधिकांश अप्रकाशित ही है। कालिदास के महाकाव्य 'कुमारसम्भव' तथा 'रघुवंश' और अश्वघोष के महाकाव्य 'बुद्धचरित' का सम्पूर्ण अनुवाद भी इन्होंने काव्यमय रूप में ही, किया है। अनुवाद में मूलकवि की अनुभूतियों और संवेदनाओं के साथ महादेवीजी का सहज तादात्म्य पाया जाता है। एक नहीं, अनेक कवियों के साथ

तादात्म्य की यह क्षमता जिस व्यापक विराट प्रतिभा की अपेक्षा रखती है, वह इन्हें प्राप्त है। इन्होंने स्वीकार किया है कि अनुवाद मूल आत्मा का नवीन अवतरण है, अस्तु उसकी सार्थकता आत्मा के न बदलने और शरीर के नवीन रहने पर ही चरितार्थ होती है। इनके अनुवाद में भाषा की ध्वनि, संकेत, प्रतीक और अभिव्यञ्जना की प्रणाली में चाहे जो भी अन्तर हो, जो अनिवार्य है, परन्तु कवि की मूल भावना को यथावत् अक्षुण्ण रखने में वे सर्वथा सफल हैं।

प्रायः अर्द्धशती की अवधि में महादेवीजी ने एकनिष्ठ होकर अबाध गति से अपने भावमय सृजन और कर्ममय जीवन की साधना में साथ-साथ संलग्न रहकर अपनी इस घोषणा को सार्थक बनाया है—'कला के पारस का स्पर्श पा लेनेवाले का कलाकार के अतिरिक्त कोई नाम नहीं, साधक के अतिरिक्त कोई वर्ग नहीं, सत्य के अतिरिक्त कोई पूँजी नहीं, भाव-सौन्दर्य के अतिरिक्त कोई व्यापार नहीं और कल्याण के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं।'

संतोष के साथ उन्होंने यह भी कहा है—'जीवन के तुतले उपक्रम से लेकर अब तक मेरा मन अपने प्रति विश्वासी ही रहा है। मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने, दिग्भ्रांत होने और चली राह में पग-पग गिनकर पश्चात्ताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नहीं मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है, केवल इतना ही नहीं, वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये हैं।' यह इनके अखण्ड और सुगठित व्यक्तित्व का ही प्रमाण है—'कथनी, करनी और रहनी की यह एकता जो रचना, विचार और जीवन के रूप में अविरोधी जान पड़े, कोई सामान्य विशेषता नहीं है। महादेवीजी के लेखन की सचाई और स्थायित्व के विषय में हमें निश्शंक होना चाहिए।'

साहित्यिकों और साहित्यिक संस्थाओं ने, समाज और सरकार ने—सम्पूर्ण राष्ट्र ने इनकी विजय-यात्रा की उपलब्धियों की महत्ता को स्वीकार करते हुए इन्हें सम्मानित और अभिनंदित किया है, यह किसीसे छिपा नहीं।

अस्तु 'रजकणों में खेलती विरज विधु की चाँदनी' महादेवीजी का व्यक्तित्व समात्मभाव की साधना से जितना सरल, मधुर, करुण और कोमल है, उनका कृतित्व उतना ही उदात्त, व्यापक, विराट एवं महान है। हिमालय को सम्बोधित करते हुए इन्होंने जैसे अपने व्यक्तित्व और कृतित्व का अनायास ही उद्घाटन

कर दिया है—

हे चिर महान !

× × ×

मेरे जीवन का आज मूक तेरी छाया से हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छू ले मन ले करुणा की थाह नाप;
उर में पावस दृग में विहान !

वास्तव में महादेवी के व्यक्तित्व और कृतित्व से तुलना करने के लिए हिमालय ही सबसे अधिक उपयुक्त है। वही उन्नत और दिव्य रूप, वही विराट तथा विशाल प्रसार, वही अमल-धवल एवं अटल-अचल धीरता-गम्भीरता, वही पर-दुःख-कातरता, करुणा तथा स्नेहसिक्त तरलता और सबसे बढ़कर वही सर्वसुखद शुभ्र मुक्तहास—यही तो महादेवी हैं।

हमें उनका यह सन्देश स्मरण रखना चाहिए—'इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी, स्वप्नद्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, अध्यात्म से बँधा हो या भौतिकता का अनुगत, उसके निकट यही एक मार्ग शेष है कि वह अध्ययन से मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर अपनी सम्पूर्ण संवेदना-शक्ति के साथ जीवन में घुल-मिल जावे। उसकी केवल व्यक्तिगत सुविधा-असुविधा आज गौण है, उसकी केवल व्यक्तिगत हार-जीत आज महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि उसके सारे व्यष्टिगत सत्य की आज समष्टिगत परीक्षा है।)उसे स्वप्नद्रष्टा भी होना है, जीवन के क्षुत्क्षाम निम्नस्तर तक मानसिक खाद्य भी पहुँचाना है, तृषित मानवता को संवेदना का जल भी देना है और सबके अज्ञान का भार भी सहना है। सारांश यह कि आज के कवि को अपने लिए अनागरिक होकर भी संसार के लिए गृही, अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी, अपने लिए संन्यासी होकर भी सबके लिए कर्मयोगी होना होगा, क्योंकि आज उसे अपने को खोकर पाना है।' अस्तु—

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥

—गंगाप्रसाद पाण्डेय

संकलन

क्रम

रजनी ओढ़े जाती थी

रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारों की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली।

शशि को छूने मचली-सी
लहरों का कर-कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिंगन;

अपनी जब करुण कहानी
कह जाता है मलयानिल,
आँसू से भर जाता जब
सूखा अवनी का अंचल।

पल्लव के डाल हिंडोले
सौरभ सोता कलियों में,
छिप-छिप किरणें आतीं जब
मधु से सींची गलियों में;

आँखों में रात बिता जब
विधु ने पीला मुख फेरा,
आया फिर चित्र बनाने
प्राची में प्रात चितेरा

कन-कन में जब छायी थी
वह नवयौवन की लाली,
मैं निर्धन तब आयी ले
सपनों से भर कर डाली।

जिन चरणों की नख-आभा
ने हीरक-जाल लजाये,
उन पर मैंने धुँधले से
आँसू दो-चार चढ़ाये,

इन ललचायी पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।

उस सोने के सपने को
देखे कितने दिन बीते,
आँखों के कोष हुए हैं
मोती बरसा कर रीते।

अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली;

मेरी आहें सोती हैं
इन ओठों की ओटो में
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटों में

चिंता क्या है, हे निर्मम
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा।

चाहता है यह पागल प्यार

चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार।

कलियों के उच्छ्वास शून्य में ताने एक वितान,
तुहिन-कणों पर मृदु कम्पन से सेज बिछा दे गान,
जहाँ सपने हों पहरेदार;
अनोखा एक नया संसार।

करते हों आलोक जहाँ बुझ-बुझ कर कोमल प्राण,
जलने में विश्राम जहाँ मिटने में हो निर्वाण,
वेदना मधु-मदिरा की धार;
अनोखा एक नया संसार।

मिल जावें उस पार क्षितिज के सीमा सीमाहीन,
गर्वीले नक्षत्र धरा पर लोटें हो कर दीन,
उदधि हो नभ का शयनागार;
अनोखा एक नया संसार।

जीवन की अनुभूति-तुला पर अरमानों से तोल,
यह अबोध मन मूक व्यथा से ले पागलपन मोल,
करें दृग आँसू का व्यापार;
अनोखा एक नया संसार।

—नीहार

छाया की आँखमिचौनी

छाया की आँखमिचौनी
मेघों का मतवालापन,
रजनी के श्याम कपोलों
पर ढरकीले श्रम के कन;

फूलों की मीठी चितवन
नभ की ये दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के
वे किरणों की फुलझड़ियाँ;

विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरंद भरी सी,
जिसमें उजियारी रातें
लुटतीं घुलतीं मिसरी सी।

भिक्षुक से फिर जाओगे
जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे
इन प्राणों का महँगापन।

क्यों आज दिये देते हो
अपना मरकत-सिंहासन ?
यह है मेरे मरु-मानस
का चमकीला सिकता-कन।

'आलोक यहाँ लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन।

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दुख
आँसू बनकर खोता है।

जग हँसकर कह देता है
मेरी आँखें है निर्धन,
इनके बरसाये मोती
क्या वह अब तक पाया गिन ?

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन ।

—नीहार

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास
देव-वीणा का टूटा तार,
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार
रत्न वह प्राणों का शृंगार;
नयी आशाओं का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन !

क्षीरनिधि की थी सुप्त तरंग
सरलता का न्यारा निर्झर,
हमारा वह सोने का स्वप्न
प्रेम की चमकीली आकर;
शुभ्र जो था निर्मेघ गगन
सुभग मेरा संगी जीवन !

अलक्षित आ किसने चुपचाप
सुना अपनी सम्मोहन तान,
दिखाकर माया का साम्राज्य
बना डाला इसको अनजान ?
मोह मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन !

न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज;
असम्भव है चिर सम्मेलन
न भूलो क्षणभंगुर जीवन !

तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश,
नचाता मायावी संसार
लुभा जाता सपनों का हास;
मानते विष को संजीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन !

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन !

छलकती जाती है दिन-रैन
लबालब तेरी प्याली मीत,
ज्योति होती जाती है क्षीण
मौन होता जाता संगीत;
करो नयनों का उन्मीलन
क्षणिक हे मतवाले जीवन !

शून्य सा बन जाओ गम्भीर
त्याग की हो जाओ झंकार,
इसी छोटे प्याले में आज
डुबा डालो सारा संसार;
लजा जायें यह मुग्ध सुमन
बनो ऐसे छोटे जीवन !

सखे ! यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा-तेरा संग,
यहाँ मिलता काँटों में बन्धु !
सजीला-सा फूलों का रंग
तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन !

—नीहार

चुभते ही तेरा अरुण बान

चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कन-कन से फूट-फूट मधु के निर्झर से सजल गान।

इन कनक रश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग;
बुद्बुद् से बह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल जो क्षितिज-रेख थी कुहर म्लान।

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गये इन्द्रधनुषी वितान;
दे मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरल प्राण;
धो स्वर्ण-प्रात में तिमिर-गात दुहराते अलि निशि-मूक तान।

सौरभ का फैला केश-जाल,
करतीं समीर-परियाँ बिहार;
गीली केशर-मद झूम-झूम,
पीते तितली के नवकुमार;
मर्मर का मधु संगीत छेड़ देते हिल पल्लव अजान।

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,
उड़ नयी नींद-निशि क्षितिज पार;
अधखुले दृगों के कंज-कोष,
पर छाया विस्मृति का खुमार;
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास यह चतुर चितेरा सुधि-विहान।

—रश्मि

किस सुधि-वसन्त का सुमन-तीर

किस सुधि-वसन्त का सुमन-तीर,
कर गया मुग्ध मानस अधीर ?

वेदना गगन से रजतओस,
चू-चू भरती मन-कंज-कोष,
अलि-सी मँड़राती विरह-पीर।

मंजरित नवल मृदु देह-डाल,
खिल-खिल उठता नव पुलक-जाल,
मधु-कन सा छलका नयन-नीर।

अधरों से झरता स्मित पराग,
प्राणों में गूँजा नेह-राग,
सुख का बहता मलयज समीर।

धुल-धुल जाता यह हिम-दुराव,
गा-गा उठते चिर मूक-भाव,
अलि सिहर-सिहर उठता शरीर।

—रश्मि

रजत रश्मियों की छाया में

रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता;
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता।

उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सब के बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुणकाव्य वह लिख जाता।

वह उर में आता बन पाहुन,
कहता मन से 'अब न कृपण बन',
मानस की निधियाँ लेता गिन,
दृग द्वारों को खोल विश्व-भिक्षुक पर, हँस बरसा आता।

यह जग है विस्मय से निर्मित,
मूक पथिक आते जाते नित,
नहीं प्राण प्राणों से परिचित,
यह उनका संकेत नहीं जिसके बिन विनिमय हो पाता।

मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझ से क्या पतझर का नाता'।

दुख के पद छू बहते झरझर,
कण कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता।

—रश्मि

तुहिन के पुलिनों पर छबिमान

तुहिन क पुलना पर छाबमान
किसी मधु दिन की लहर समान,
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान
वेदना का ज्यों छाया-दान;

विश्व में यह भोला जीवन
स्वप्न जागृति का मूक मिलन,
बाँध अंचल में विस्मृत-धन
कर रहा किसका अन्वेषण ?

धूलि के कण में नभ की चाह
बिन्दु में दुख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन में स्वप्न अपार
एक पल असफलता का भार;

साँस में अनुतापों का दाह
कल्पना का अविराम प्रवाह,
यही तो हैं इसके लघु प्राण
शाप वरदानों के सन्धान !

भरे उर में छबि का मधुमास
दृगों में अश्रु अधर में हास,
ले रहा किसका पावस-प्यार
विपुल लघु प्राणों में अवतार ?

नील नभ का असीम विस्तार
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल से निर्झर वीचि-विलास
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास,
धरा से ले परमाणु उधार,
किया किसने मानव साकार ?

दृगों में सोते हैं अज्ञात
निदाघों के दिन पावस-रात;
सुधा का मधु हाला का राग
व्यथा के घन अतृप्ति की आग।

छिपे मानस में पवि नवनीत
निमिष की गति निर्झर के गीत,
अश्रु की उर्म्मि हास का वात
कुहू का तम माधव का प्रात !

हो गए उर में क्या वपुमान
क्षुद्रता रज की नभ का मान,
स्वर्ग की छवि रौरव की छाँह
शीत हिम की बाड़व का दाह ?

और यह विस्मय का संसार
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि में क्यों खिलकर नादान
उसी में होता अन्तर्धान ?

काल के प्याले में अभिनव
ढाल जीवन का मधु-आसव,

नाश के हिम-अधरों से, मौन
लगा देता है आकर कौन ?

बिखर कर कन-कन में लघु प्राण
गुनगुनाते रहते यह तान
'अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास'।

दूर है अपना लक्ष्य महान
एक जीवन पग एक समान;
अलक्षित परिवर्तन की डोर
खींचती हमें इष्ट की ओर।

छिपाकर उर में निकट प्रभात
गहनतम होती पिछली रात;
सघन वारिद अम्बर से छूट
सफल होते जल-कण में फूट।

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक प्रसार;
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण।

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास
विफलता में है पूर्ति-विकास।

—रश्मि

किसी नक्षत्रलोक से टूट

किसी नक्षत्रलोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदुगात,
नाम से जीवन से अनजान कहो क्या परिचय दे नादान ?

किसी निर्मम कर का आघात
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ
दूर जो उड़ जाती झंकार,
जन्म ही उसे विरह की रात सुनावे क्या वह मिलन प्रभात ?

चाह शैशव सा परिचयहीन
पलक-दोलों में पल भर झूल,
कपोलों पर जो ढुल चुपचाप
गया कुम्हला आँखों का फूल,
एक ही आदि अन्त की साँस कहे वह क्या पिछला इतिहास ?

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गूँजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार,
देश का जिसे न निज का भान बतावे क्या अपनी पहिचान ?

सिन्धु को क्या परिचय दें देव
बिगड़ते बनते वीचि-विलास?
क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद् - प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश।
मुझे क्यों देते हो अभिराम! थाह पाने का दुस्तर काम?

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास;
चुरा लाया जो विश्व-समीर
वही पीड़ा की पहली साँस।
छोड़ क्यों देते बारम्बार मुझे तम से करने अभिसार?

छिपा है जननी का अस्तित्व
रुदन में शिशु के अर्थविहीन;
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की ही जड़ता में लीन;
दृगों में छिपा अश्रु का हार सुभग है तेरा ही उपहार।

—रश्मि

दिया क्यों जीवन का वरदान

दिया क्यों जीवन का वरदान ?

इसमें है स्मृतियों का कम्पन;
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन;
स्वप्नलोक की परियाँ इसमें
भूल गयी मुस्कान।

इसमें है झंझा का शैशव;
अनुरंजित कलियों का वैभव,
मलय पवन इसमें भर जाता
मृदु लहरों के गान।

इन्द्रधनुष सा घन अंचल में;
तुहिन-बिन्दु सा किसलय दल में;
करता है पल पल में देखो
मिटने का अभिमान।

सिकता में अंकित रेखा सा;
वात-विकम्पित दीपशिखा सा;
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान।

—रश्मि

विहग-शावक से जिस दिन मूक

विहग-शावक से जिस दिन मूक,
पड़े थे स्वप्न नीड़ में प्राण,
अपरिचित थी विस्मृति की रात,
नहीं देखा था स्वर्ण विहान !

रश्मि बन तुम आये चुपचाप,
सिखाने अपने मधुमय गान;
अचानक दीं वे पलकें खोल,
हृदय में बेध व्यथा का बान

हुए फिर पल में अन्तर्धान

रँग रही थी सपनों के चित्र,
हृदय-कलिका मधु से सुकुमार;
अनिल बन सौ सौ बार दुलार,
तुम्हीं ने खुलवाये उर-द्वार;

और फिर रहे न एक निमेष,
लुटा चुपके से सौरभ-भार;
रह गयी पथ में बिछ कर दीन,
दृगों की अश्रुभरी मनुहार

मूक प्राणों की विफल पुकार !

विश्व-वीणा में कब से मूक,
पड़ा था मेरा जीवन-तार;
न मुखरित कर पायी झकझोर
थक गयीं सौ सौ मलयवयार !

तुम्हीं रचते अभिनव संगीत,
कभी मेरे गायक इस पार;
तुम्हीं ने कर निर्मम आघात
छेड़ दी यह बेसुर झंकार

और उलझा डाले सब तार !

—रश्मि

न थे जब परिवर्तन दिन-रात

न थे जब परिवर्तन दिन-रात,
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात,
व्याप्त क्या सूने में सब ओर,
एक कम्पन थी एक हिलोर ?

न जिसमें स्पन्दन था न विकार,
न जिसका आदि न उपसंहार,
सृष्टि के आदि आदि में मौन,
अकेला सोता था वह कौन ?

स्वर्ण-लूता सी कब सुकुमार,
हुई उसमें इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरंगे तार,
बुन लिया अपना ही संसार !

बदलता इन्द्रधनुष सा रंग,
सदा वह रहा नियति के संग,
नहीं उसको विराम विश्राम,
एक बनने मिटने का काम !

सिन्धु की जैसे तप्त उसाँस,
दिखा नभ में लहरों का लास;
घात प्रतिघातों की खा चोट,
अश्रु बन फिर आ जाती लौट !

बुलबुले मृदु उर के से भाव,
रश्मियों से कर कर अपनाव;
यथा हो जाते जलमय प्राण
उसी में आदि वही अवसान !

धरा की जड़ता उर्वर बन,
प्रकट करती अपार जीवन;
उसी में मिलते वे द्रुततर,
सींचने क्या नवीन अंकुर ?

मृत्यु का प्रस्तर-सा उर चीर,
प्रवाहित होता जीवन-नीर,
चेतना से जड़ का वन्धन,
यही संसृति का हृत्कम्पन !

विविध रंगों के मुकुर सँवार,
जड़ा जिसने यह कारागार;
बना क्या बन्दी वही अपार,
अखिल प्रतिविम्बों का आधार ?

वक्ष पर जिसके जल उडुगण,
बुझा देते असंख्य जीवन;
कनक औ नीलम-यानों पर,
दौड़ते जिस पर निशि-वासर;

पिघल गिरि से विशाल बादल,
न कर सकते जिसको चंचल;
तडित् की ज्वाला घन-गर्जन,
जगा पाते न एक कम्पन;

उसी नभ सा क्या वह अविकार
और परिवर्तन का आधार ?
पुलक से उठ जिसमें सुकुमार,
लीन होते असंख्य संसार !

—रश्मि

अलि कैसे उनको पाऊँ

अलि कैसे उनको पाऊँ ?

वे आँसू बनकर मेरे,
इस कारण ढुलढुल जाते,
इन पलकों के बन्धन में,
मैं बाँध बाँध पछताऊँ !

मेघों में विद्युत्-सी छबि,
उनकी बनकर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में,
जिससे मैं आँक न पाऊँ !

वे आभा बन खो जाते,
शशि-किरणों की उलझन में,
जिसमें उनको कण-कण में,
ढूँढूँ पहिचान न पाऊँ !

सोते, सागर की धड़कन,
बन, लहरों की थपकी से,
अपनी यह करुण कहानी,
जिसमें उनको न सुनाऊँ !

वे तारक-बालाओं की,
अपलक चितवन बन आते,

जिसमें उनकी छाया भी,
मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ !

वे चुपके से मानस में,
आ छिपते उच्छ्वासें बन,
जिसमें उनको साँसों में,
देखूँ पर रोक न पाऊँ !

वे स्मृति बनकर मानस में,
खटका करते हैं निशि दिन,
उनकी इस निष्ठुरता को
जिसमें मैं भूल न जाऊँ !

-रश्मि

प्राणों के अन्तिम पाहुन

प्राणों के अन्तिम पाहुन !

चाँदनी-धुला, अंजन सा, विद्युत्-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीर-पंखों से उड़ जो नभ में घिर आता,
वह वारिद तुम आना बन !

ज्यों श्रान्त पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलकों में धीरे निद्रा का मधु ढुलकाती,
त्यों करना बेसुध जीवन !

अज्ञात लोक से छिप-छिप ज्यों उतर रश्मियाँ आतीं,
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलों के उर खुलवातीं,
छिप आना तुम छायातन !

हिम से जड़ नीला अपना निस्पन्द हृदय ले आना,
मेरा जीवन-दीपक धर उसको सस्पन्द बनाना,
हिम होने देना यह तन !

कितनी करुणाओं का मधु कितनी सुषमा की लाली,
पुतली में छान भरी है मैंने जीवन की प्याली,
पी कर लेना शीतल मन !

कितने युग बीत गये इन निधियों का करते संचय,
तुम थोड़े से आँसू दे इन सब को कर लेना क्रय,
अब हो व्यापार विसर्जन !

है अन्तहीन लय यह जग पल पल है मधुमय कम्पन,
तुम इसकी स्वरलहरी में धोना अपने श्रम के कण,
मधु से भरना सूनापन !

पाहुन से आते जाते कितने सुख के दुख के दल,
वे जीवन के क्षण-क्षण में भरते असीम कोलाहल,
तुम बन आना नीरव क्षण !

तेरी छाया में दिव को हँसता है गर्वीला जग,
तू एक अतिथि जिसका पथ हैं देख रहे अगणित दृग,
साँसों में घड़ियाँ गिन-गिन !

—रश्मि

धीरे धीरे उतर क्षितिज से

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी !

तारकमय नव वेणी-बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकती आ वसन्त रजनी !

मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी !
विहँसती आ वसन्त रजनी !

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि,
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी !
सकुचती आ वसन्त रजनी !

सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पद-चाप हो गयी
पुलकित यह अवनी !
सिहरती आ वसन्त रजनी !

—नीरजा

विरह का जलजात जीवन

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !

वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल;
तरल जल-कण से बने घन सा क्षणिक मृदुगात !
जीवन विरह का जलजात !

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास;
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात !
जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार;
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात।
जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !
जीवन विरह का जलजात !

—नीरजा

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में;
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पावड़ पल क,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में,
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ !

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !

रूपसि तेरा घन-केश-पाश

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !

नभ-गंगा की रजत धार में,
धो आयी क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन हे सद्यस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से
चूती बूँदें कर विविध लास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

सौरभ भीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल,
चल अंचल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल;
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
वक्र-पाँतों का अरविन्द हार;
तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जातीं मलयज बयार;

केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल;
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

—नीरजा

तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या

तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या !

तारक में छबि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,
भर लायी हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,
खेल खेल थक थक सोने दो
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर-विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित-मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछूँ क्या मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

रोम रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या ?

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,
भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय मेरी अब हार विजय क्या ?

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
. काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?
तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या !

—नीरजा

पथ देख बिता दी रैन

पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

तम ने धोया नभ पंथ
सुवासित हिमजल से;
सूने आँगन में दीप
जला दिये झिलमिल से;
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

धर कनक-थाल में मेघ
सुनहला पाटल सा,
कर बालारुण का कलश
विहग-रव मंगल सा,
आया प्रिय-पथ से प्रात
सुनायी कहानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

नव इन्द्रधनुष सा चीर
महावर अंजन ले,
अलि-गुंजित मीलित पंकज
—नूपुर रुनझुन ले,
फिर आयी मनाने साँझ
मैं बेसुध मानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

इन श्वासों को इतिहास
आँकते युग बीते;
रोमों में भर भर पुलक
लौटते पल रीते;
यह ढुलक रही है याद
नयन से पानी नहीं!
मैं प्रिय पहचानी नहीं!

अलि कुहरा सा नभ, विश्व
मिटे बुद्‌बुद्-जल सा;
यह दुख का राज्य अनन्त
रहेगा निश्चल सा;
हूँ प्रिय की अमर सुहागिनि
पथ की निशानी नहीं!
मैं प्रिय पहचानी नहीं!

—नीरजा

कैसे सँदेश प्रिय पहुँचाती

कैसे सँदेश प्रिय पहुँचाती !

दृग-जल की सित मसि है अक्षय,
मसिप्याली, झरते तारक-द्वय;
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि से लिख श्वासों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !

छायापथ में छाया से चल,
कितने आते जाते प्रतिपल;
लगते उनके विभ्रम इंगित,
क्षण में रहस्य क्षण में परिचित;
मिलता न दूत वह चिरपरिचित
जिसको उर का धन दे आती !
कैसे सँदेश प्रिय पहुँचाती !

अज्ञात पुलिन से, उज्ज्वलतर,
किरणें प्रवाल-तरिणी में भर,
तम के नीलम-कूलों पर नित,
जो ले आती अरुणा मस्मित
वह मेरी करुण कहानी में
मुस्कानें अंकित कर जाती !

सज केशर-पट तारक-बेंदी,
दृग अंजन मृदु पद में मेंहदी,
आती भर मदिरा से गगरी,
संध्या अनुराग सुहाग भरी;
मेरे विषाद में वह अपने
मधुरस की बूँदें छलकाती !

डाले नव घन का अवगुंठन,
दृग-तारक में सकरुण चितवन,
पगध्वनि से सपने जाग्रत कर,
श्वासों से फैला मूक तिमिर,
निशि अभिसारों में आँसू से
मेरी मनुहारें धो जाती !
कैसे सँदेश प्रिय पहुँचाती !

—नीरजा

मैं बनी मधुमास आली

मैं बनी मधुमास आली !

आज मधुर विषाद की घिर करुण आयी यामिनी;
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी;
उमड़ आयी री दृगों में
सजनि कालिन्दी निराली !

रजत-स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली;
जाग सुख-पिक ने अचानक मदिर पंचम तान ली;
बह चली निश्वास की मृदु
वात मलय-निकुंज पाली !

सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधु स्नात से;
आज जीवन के निमिष भी दूत है अज्ञात से;
क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधु-रागवाली ?

मैं बनी मधुमास आली !

—नीरजा

टूट गया वह दर्पण निर्मम

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

उसमें हँस दी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँखमिचौनी
प्रिय ! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम' !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

अपने दो आकार बनाने,
दोनों का अभिसार दिखाने,
भूलों का संसार बसाने,
जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस हँस दे डाला था निर्मम !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

कैसा पतझर कैसा सावन,
कैसी मिलन विरह की उलझन,
कैसा पल घड़ियोंमय जीवन,
कैसे निशि-दिन कैसे सुख-दुख
आज विश्व में तुम हो या तम !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अंगराग पुलकों का मल मल,
स्वप्नों से आँजूँ पलकें चल,
किस पर रीझूँ किससे रूठूँ
भर लूँ किस छबि से अन्तरतम!

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुंठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुम में अपना दुख प्रियतम !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

—नीरजा

ओ विभावरी

ओ विभावरी !

चाँदनी का अंगराग,
माँग में सजा पराग,
रश्मि-तार बाँध मृदुल
चिकुर-भार री !
ओ विभावरी !

अनिल घूम देश देश,
लाया प्रिय का सँदेश,
मोतियों के सुमन कोष
वार वार री !
ओ विभावरी !

लेकर मृदु ऊर्म्मबीन,
कुछ मधुर करुण नवीन,
प्रिय की पदचाप-मदिर
गा मलार री !
ओ विभावरी !

बहने दे तिमिर भार,
बुझने दे यह अँगार,
पहिन सुरभि का दुकूल
वकुल हार री !
ओ विभावरी !

—नीरजा

जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर

जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर !
दोनों मिलकर देते रजकण चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर !

जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डाल डाल,
सुन फूट फूट उठते पल पल सुख-दुख-मंजरियों के अंकुर !

विस्मृति-शशि के हिम-किरण-बाण,
करते जीवन-सर मूक प्राण,
बन मलय-पवन चढ़ रश्मि-यान,
मैं आती ले मधु का सँदेश भरने नीरव उर में मर्मर !

यह नियति-तिमिर-सागर अपार,
बुझते जिसमें तारक-अँगार;
मैं प्रथम रश्मि सी कर शृँगार,
आ अपनी छबि से ज्योतिर्मय कर देती उसकी लहर लहर !

युग से थी प्रिय की मूक बीन,
थे तार शिथिल कम्पनविहीन;
मैंने द्रुत उनकी नींद छीन,
सूनापन कर डाला क्षण में नव झंकारों से करुण मधुर !

जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर !

—नीरजा

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !

पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !

स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !

धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे !

क्या पूजन क्या अर्चन रे !

—नीरजा

प्रिय ! सान्ध्य गगन मेरा जीवन

प्रिय ! सान्ध्य गगन
मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन !

साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन
यह अश्रुमती हँसती चितवन !

प्रिय ! सान्ध्य गगन मेरा जीवन !

लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गंध धीर,
सुरभित हैं जीवन - मृत्यु - तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !

प्रिय ! सान्ध्य गगन मेरा जीवन !

अब आदि - अन्त दोनों मिलते,
रजनी - दिन - परिणय से खिलते
आँसू मिस हिम के कण ढुलते,
ध्रुव आज बना स्मृति का चलक्षण !

प्रिय ! सान्ध्य गगन मेरा जीवन !

इच्छाओं के सोने से सर,
किरणों से द्रुत भीने सुन्दर,
सूने असीम नभ में चुभकर,
बन बन आते नक्षत्र-सुमन

प्रिय ! सान्ध्य गगन मेरा जीवन !

घर आज चले सुख-दुःख विहग,
तम पोंछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलकों में पाहुन !

—सान्ध्यगीत

मैं सजग चिर साधना ले

मैं सजग चिर साधना ले !

सजग प्रहरी से निरन्तर,
जागते अलि रोम निर्भर;
निमिष के बुद्बुद् मिटाकर,
एक रस है समय-सागर;

हो गयी आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले !

मूँद पलकों में अचंचल
नयन का जादूभरा तिल,
दे रही हूँ अलख अविकल
को सजीला रूप तिल तिल;

आज वर दो मुक्ति आवे बन्धनों की कामना ले !

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा;
दु:ख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ' न सीखा !

मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना ले !

मैं सजग चिर साधना ले !

—सान्ध्यगीत

सो रहा है विश्व....

सो रहा है विश्व, पर प्रिय तारकों में जागता है !

नियति बन कुशली चितेरा
रँग गयी सुख दुख रँगों से
मृदुल जीवन पात्र मेरा !
स्नेह को देती सुधा भर अश्रु खारे माँगता है !

धूपछाँही विरह - वेला,
विश्व-कोलाहल बना वह
ढूँढ़ती जिसको अकेला;
छाँह दृग पहचानते पद-चाप यह उर जानता है !

रंगमय है देव दूरी !
छू तुम्हें रह जायगी यह
चित्रमय क्रीड़ा अधूरी !
दूर, रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है !

वह सुनहला हास तेरा
अंक भर घनसार सा
उड़ जायगा अस्तित्व मेरा !
मूँद पलकें रात करती जब हृदय हठ ठानता है !

मेघ रूँधा अजिर गीला
टूटता सा इन्दु - कन्दुक
रवि झुलसता लोल पीला !
यह खिलौने और यह उर ! प्रिय नयी असमानता है !

—सान्ध्यगीत

मैं नीर भरी दुख की बदली

मैं नीर भरी दुख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली !

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन - अंकुर हो निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

—सान्ध्यगीत

मेरी है पहेली बात

मेरी है पहेली बात !

रात के झीने सितांचल
से बिखर मोती बने जल,
स्वप्न पलकों में बिखर झर
प्रात होते अश्रु केवल !
सजनि मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात !

मुस्कराकर राग मधुमय
वह लुटाता पी तिमिर विष,
आँसुओं का क्षार पी मैं
बाँटती नित स्नेह का रस !
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ, मधुर जितना प्रात !

ताप जर्जर विश्व उर पर
तूल से घन छा गये भर,
दुःख से तप हो मृदुलतर
उमड़ता करुणा भरा उर !
सजनि मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात !

मेरी है पहेली बात !

—सान्ध्यगीत

चिर सजग आँखें उनींदी...

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जागकर विद्युत्-शिखाओं में निठुर तूफान बोले !
पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना !
जाग तुझको दूर जाना !

ध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
थ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिये कारा बनाना !
जाग तुझको दूर जाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?
सो गयी आँधी मलय की रात का उपधान ले क्या ?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया ?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना ?
जाग तुझको दूर जाना !

कह न ठंडी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी !
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !
जाग तुझको दूर जाना !

—सान्ध्यगीत

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो !

हो उठी हैं चंचु छूकर,
तीलियाँ भी वेणु सस्वर;
बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,
सिहरता जड़ मौन पिंजर !
आज जड़ता में इसी की बोल दो !

जग पडा छू अश्रु-धारा,
हत परों का विभव सारा;
अब अलस बन्दी युगों का
ले उड़ेगा शिथिल कारा !
पंख पर वे सजल सपने तोल दो !

क्या तिमिर कैसी निशा है ?
आज विदिशा ही दिशा है;
दूर खग आ निकटता के
अमर बन्धन में बसा है !
प्रलय घन में आज राका घोल दो !

चपल पारद सा विकल तन,
सजल नीरद सा भरा मन,
नाप नीलाकाश ले जो
बेड़ियों का माप यह बन,
एक किरण अनन्त दिन की मोल दो !

—सान्ध्यगीत

हे चिर महान

हे चिर महान !

यह स्वर्ण रश्मि छू श्वेत भाल,
बरसा जाती रंगीन हास,
सेली बनता है इन्द्रधनुष,
परिमल मल मल जाता बतास !
पर रागहीन तू हिमनिधान !

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिये है दीन क्षार,
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश भार !
कितने मृदु कितने कठिन प्राण !

टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार हार;
बह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुनकर जलते कण की पुकार !
सुख से विरक्त दुख में समान !

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप !
उर में पावस दृग में विहान !

—सान्ध्यगीत

दीप मेरे जल अकम्पित...

दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचंचल !

सिन्धु का उच्छ्वास घन है,
तड़ित्, तम का विकल मन है,
भीति क्या नभ है व्यथा का
आँसुओं से सिक्त अंचल !

स्वर-प्रकम्पित कर दिशायें,
मीड़ सब भू की शिरायें,
गा रहे आँधी - प्रलय
तेरे लिये ही आज मंगल !

मोह क्या निशि के वरों का,
शलभ के झुलसे परों का,
साथ अक्षय ज्वाल का
तू ले चला अनमोल सम्बल !

पथ न भूले, एक पग भी,
घर न खोये, लघु विहग भी,
स्निग्ध लौ की तूलिका से
आँक सब की छाँह उज्ज्वल !

हो लिये सब साथ अपने,
मृदुल आहटहीन सपने,
तू इन्हें पाथेय बिन, चिर
प्यास के मरु मे न खो चल !

धूम में अब बोलना क्या,
क्षार में अब तोलना क्या ?
प्रात हँस रोकर गिनेगा,
स्वर्ण कितने हो चुके पल !

दीप रे तू गल अकम्पित, चल अचंचल !

—दीपशिखा

पंथ होने दो अपरिचित

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !

घेर ले छाया अमा बन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन ;
और होंगे नयन सूखे
तिल बुझे औ' पलक रूखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ
शत विद्युतों में दीप खेला !

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !

अन्य होंगे चरण हारे,
और है जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे ;
दुखव्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति
से तिमिर में स्वर्ण वेला !

दूसरी होगी कहानी;
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोयी निशानी ;
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ'
चिनगारियों का एक मेला !

हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो !
ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना-जल, स्वप्न-शतदल
जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला !

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !

—दीपशिखा

आज तार मिला चुकी हूँ

आज तार मिला चुकी हूँ !

सुमन में संकेत - लिपि,
चंचल विहग स्वर-ग्राम जिसके,
बात उठता, किरण के
निर्झर झुके, लय-भार जिसके,
वह अनामा रागिनी अब साँस में ठहरा चुकी हूँ !

सिन्धु चलता मेघ पर
रुकता तड़ित का कंठ गीला,
कंटकित सुख से धरा,
जिसकी व्यथा से व्योम नीला,
एक स्वर में विश्व की दोहरी कथा कहला चुकी हूँ।

आज तार मिला चुकी हूँ !

एक ही उर में पले,
पथ एक से दोनों चले हैं,
पलक - पुलिनों पर, अधर
उपकूल पर दोनों पले हैं,
एक ही झंकार में युग अश्रु-हास धुला चुकी हूँ !

रंग - रस - संसृति समेटे,
रात लौटी प्रात लौटे,
लौटते युग कल्प पल
पतझार औ' मधुमास लौटे,
राग में अपने कहो किसको न पार बुला चुकी हूँ !

निष्करुण जो हँस रहे थे
तारकों में दूर ऐंठे,
स्वप्न नभ के आज,
पानी हो तृणों के साथ बैठे,
पर न मैं अब तक व्यथा का छंद अन्तिम गा चुकी हूँ !

आज तार मिला चुकी हूँ !

—दीपशिखा

यह सपने सुकुमार...

यह सपने सुकुमार तुम्हारी स्मित से उजले !

छूकर मेरे सजल दृगों की मधुर कहानी,
इनका हर कण हुआ अमर करुणा वरदानी,
उड़े तृणों की बात तारकों से कहने यह
चुन प्रभात के गीत, साँझ के रंग सलज ले !

लिये छाँह के साथ अश्रु का कुहक सलोना,
चले बसाने महाशून्य का कोना कोना,
इनकी गति में आज मरण वेसुध बन्दी है,
कौन क्षितिज का पाश इन्हें जो बाँध सहज ले !

पंथ माँगना इन्हें नहीं पाथेय न लेना
उन्नत मूक असीम, मुखर सीमित तल देना,
बादल सा उठ इन्हें उतरना है जल-कण-सा,
नभ विद्युत् के बाण, सजा शूलों को रजले !

जाते अक्षरहीन व्यथा की लेकर पाती,
लौटाना है इन्हें स्वर्ग से भू की थाती,
यह संचारी दीप, ओट इनको झंझा दे,
आगे बढ़, ले प्रलय, भेंट तम आज गरज ले !

छायापथ में अंक बिखर जावें इनके जब,
फूलों में खिल रूप निखर आवें इनके जब,
वर दो तब यह बाँध सकें सीमा में तुमको,
मिलन-विरह के निमिष गुथीं साँसों की स्रज ले !

—दीपशिखा

तरल मोती से नयन भरे

तरल मोती से नयन भरे !

मानस से ले उठे स्नेह-घन,
कसक-विद्यु पुलकों के हिमकण,
सुधि-स्वाती की छाँह पलक की सीपी में उतरे !

सित दृग हुए क्षीर-लहरी से
तारे मरकत नील तरी से,
सूखे पुलिनों सी वरुणी से फेनिल फूल झरे !

पारद से अनबींधे मोती,
साँस इन्हें बिन तार पिरोती,
जग के चिर श्रृंगार हुए, जब रजकण में बिखरे !

क्षार हुए, दुख में मधु भरने,
तपे, प्यास का आतप हरने,
इनसे धुलकर धूल भरे सपने उजले निखरे !

तरल मोती से नयन भरे !

—दीपशिखा

यह मन्दिर का दीप...

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर,
गये आरती वेला को शत-शत लय से भर;
जब था कलकंठों का मेला,
विहँसे उपल तिमिर था खेला,
अब मंदिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो !

चरणों से चिह्नित अलिन्द की भूमि सुनहली,
प्रणत शिरों के अंक लिये चन्दन की दहली,
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप - अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित
तम में सब होंगे अन्तर्हित,
सब की अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो !

पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,
साँसों की समाधि सा जीवन,
मसि-सागर सा पंथ गया बन
रुका मुखर कण-कण का स्पन्दन,
इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो !

झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा - जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

—दीपशिखा

तू धूल-भरा ही आया

तू धूल-भरा ही आया !
ओ चंचल जीवन-बाल ! मृत्यु-जननी ने अंक लगाया !

साधों ने पथ के कण मदिरा से सींचे,
झंझा आँधी ने फिर फिर आ दृग मीचे,
आलोक तिमिर ने क्षण का कुहक बिछाया !

अंगार-खिलौनों का था मन अनुरागी,
पर रोमों में हिम-जड़ित अवशता जागी,
शत शत प्यासों की चली लुभाती छाया !

गाढ़े विषाद ने अंग कर दिये पंकिल,
बिंध गये पगों में शूल व्यथा के दुर्मिल,
कर क्षार साँस ने उर का स्वप्न उड़ाया !

पाथेय-हीन जब छोड़ गये सब सपने,
आख्यान शेष रह गये अंक ही अपने,
तब उस अंचल ने दे संकेत बुलाया !

जिस दिन लौटा तू चकित थकित-सा उन्मन,
करुणा से उसके भर-भर आये लोचन,
तब उस अंचल ने दे संकेत बुलाया !

जिस दिन लौटा तू चकित थकित-सा उन्मन,
करुणा से उसके भर-भर आये लोचन,
चितवन छाया में दृग जल से नहलाया !

पलकों पर धर-धर अगणित शीतल चुम्बन,
अपनी साँसों से पोंछ वेदना के क्षण,
हिम-स्निग्ध करों से वेसुध प्राण सुलाया !

नतन प्रभात में अक्षय गति का वर दे,
तन सजल घटा-सा तड़ित्-छटा-सा उर दे,
हँस तुझे खेलने फिर जग में पहुँचाया !

तू धूल भरा जब आया,
ओ चंचल जीवन-बाल मृत्यु-जननी ने अंक लगाया !

-दीपशिखा

जो न प्रिय पहिचान पाती

जो न प्रिय पहिचान पाती !

दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत्-सी तरल बन,
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किसलिये हर साँस तम में
सजल दीपक राग गाती !

चाँदनी के बादलों से स्वप्न फिर फिर घेरते क्यों ?
मदिर सौरभ से सने क्षण दिवस-रात बिखेरते क्यों ?
सजग स्मित क्यों चितवनों के
सुप्त प्रहरी को जगाती !

मेघ-पथ में चिह्न विद्युत् के गये जो छोड़ प्रिय-पद,
जो न उनकी चाप का मैं जानती सन्देश उन्मद,
किसलिये पावस नयन में
प्राण में चातक बसाती !

कल्प-युगव्यापी विरह को एक सिहरन में सँभाले,
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि-दीप बाले,
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पन्दन में मनाती ?

–दीपशिखा

मिट चली घटा अधीर

मिट चली घटा अधीर !

चितवन तम-श्याम रंग,
इन्द्रधनुष भ्रकुटि भंग,
विद्युत् का अंगराग,
दीपित मृदु अंग-अंग,
उड़ता नभ में अछोर तेरा नव नील चीर !

अविरत गायक विहंग,
लास-निरत किरण संग,
पग-पग पर उठते बज
चापों में जलतरंग,
आयी किसकी पुकार लय का आवरण चीर ?

थम गया मदिर विलास,
सुख का वह दीप्त हास,
टूटे सब वलय-हार,
व्यस्त चीर अलक-पाश,
बिंध गया अजान आज किसका मृदु-कठिन तीर ?

मिट चली घटा अधीर !

छाया में सजल रात,
जुगनू में स्वप्न-जात,
लेकर, नव अन्तरिक्ष,
बुनती निश्वास-वात,
विगलित हर रोम हुआ रज से सुन नीर नीर !

प्यासे का जान ग्राम,
झुलसे का पूछ नाम,
धरती के चरणों पर
नभ के धर शत प्रणाम,
गल गया तुषार-भार बनकर वह छबि-शरीर !

रूपों के जग अनन्त,
रँग-रस के चिर वसन्त,
बन कर साकार हुआ,
तेरा वह अमर अन्त,
भू का निर्वाण हुई तेरी वह करुण पीर !

घुल गयी घटा अधीर !

दीपशिखा

कोई यह आँसू आज माँग ले जाता

कोई यह आँसू आज माँग ले जाता !

तापों से खारे जो विषाद से श्यामल,
अपनी चितवन में छान इन्हें कर मधु-जल,
फिर इनसे रचकर एक घटा करुणा की
कोई यह जलता व्योम आज छा जाता !

वर क्षार-शेष का माँग रही जो ज्वाला,
जिसको छूकर हर स्वप्न बन चला छाला,
निज स्नेह-सिक्त जीवन-बाती से कोई,
दीपक कर इसको उर-उर में पहँचाता !

तम-कारा-बन्दी सान्ध्य रँगों सी चितवन,
पाषाण चुराये हैं लहरों से स्पन्दन,
ये निर्मम बन्धन खोल तड़ित् के कर से,
चिर रँग रूपों से फिर यह शून्य बसाता !

सिकता से तुलती साध क्षार से उर-धन,
पारस-साँसें बेमोल ले चला हर क्षण,
प्राणों के विनिमय से इनको ले कोई
दिव का किरीट भू का शृंगार बनाता !

कोई यह आँसू आज माँग ले जाता !

—दीपशिखा

सब आँखों के आँसू उजले...

सब आँखों के आँसू उजले सब के सपनों में सत्य पला !

जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरन्द भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल
देता झर यह सौरभ बिखरा !
दोनों संगी पथ एक किन्तु कब दीप खिला कब फूल जला ?

यह अचल धरा को भेंट रहा
शत शत निर्झर में हो चंचल,
चिर परिधि बना भू को घेरे
इसका नित उर्म्मिल करुणा-जल !
कब सागर उर पाषाण हुआ, कब गिरि ने निर्मम तन बदला ?

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला !

नभ तारक सा खंडित पुलकित
यह क्षुर-धारा को चूम रहा,
वह अंगारों का मधु-रस पी
केशर-किरणों-सा झूम रहा !
अनमोल बना रहने को कब टूटा कंचन हीरक पिघला ?

नीलम मरकत के सम्पुट दो
जिनमें बनता जीवन - मोती,
इसमें ढलते सब रंग - रूप
उसकी आभा स्पन्दन होती !
जो नभ में विद्युत् मेघ बना वह रज में अंकुर हो निकला !

संसृति के प्रति पग में मेरी
साँसों का नव अंकन चुन लो,
मेरे बनने - मिटने में नित
अपनी साधों के क्षण गिन लो !
जलते खिलते बढ़ते जग में घुल मिल एकाकी प्राण चला !
सपने सपने में सत्य ढला !

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला !

—दीपशिखा

पथ मेरा निर्वाण बन गया

"पथ मेरा निर्वाण बन गया !
प्रति पग शत वरदान बन गया !

आज थके चरणों ने सूने तम में विद्युत्-लोक बसाया,
बरसाती है रेणु चाँदनी की यह मेरी धूमिल छाया,
प्रलय-मेघ भी गले मोतियों
का हिम-तरल उफान बन गया !

अंजन-वदना चकित दिशाओं ने चित्रित अवगुंठन डाले,
रजनी ने मरकत-वीणा पर हँस किरणों के तार सँभाले,
मेरे स्पन्दन से झंझा का
हर-हर लय-संधान बन गया !

पारद-सी गल हुई शिलायें दुर्गम नभ चन्दन-आँगन-सा,
अंगराग घनसार वनी रज, आतप सौरभ-आलेपन-सा,
शूलों का विप मृदु कलियों के
नव मधुपर्क समान बन गया !

मिट-मिटकर हर साँस लिख रही शत शत मिलन-विरह का लेखा,
निज को खोकर निमिप आँकते अनदेखे चरणों की रेखा,
पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी
युग युग की पहचान बन गया !

देते हो तुम फेर हास मेरा निज करुणा-जलकणमय कर,
लौटाते हो अश्रु मुझे तुम अपनी स्मित के रंगों भर,
आज मरण का दूत तुम्हे छू
मेरा पाहुन प्राण बन गया !

—दीपशिखा

लौट जा ओ मलय-मारुत के झकोरे

लौट जा ओ मलय-मारुत के झकोरे

अतिथि रे अब रंगमय
मिश्री-घुला मधुपर्क कैसा !
मोतियों का अर्घ कैसा ?
प्यालियाँ रीती कली की,
शून्य पल्लव के कटोरे !

भ्रमर-नूपुर-रव गया थम
मूर्च्छिता भू-किन्नरी है,
मूक पिक की वंशरी है !
आज तो वानीर-वन के
भी गये विश्वास सो रे !

निठुर नयनों में दिवस के
मेघ का रच एक सपना,
तड़ित् में भर पुलक अपना
माँग नभ से स्नेह-रस, दे
विश्व की पलकें भिगो रे !

लौटना जब धूलि, पथ में
हो हरित अंचल बिछाये,
फूल मंगल-घट सजाये,
चरण छूने के लिये, हों
मृदुल तृण करते निहोरे !

लौट जा ओ मलय-मारुत के झकोरे !

—दीपशिखा

मेरे ओ विहग से गान

मेरे ओ विहग से गान !

सो रहे उर-नीड़ में मृदु पंख सुख-दुख के समेटे,
सघन विस्मृति में उनींदी अलस पलकों को लपेटे,
तिमिर सागर से धुले
दिशि-कूल से अनजान !

खोजता तुमको कहाँ से आ गया आलोक-सपना ?
चौंक तोले पंख, तुमको याद आया कौन अपना ?
कुहर में तुम उड़ चले
किस छाँह् को पहचान ?

शून्य में यह साध-बोझिल पंख रचते रश्मि-रेखा,
गति तुम्हारी रँग गयी परिचित रँगों से पथ अदेखा,
एक कम्पन कर रही
शत इन्द्रधनु निर्माण !

तैर तम-जल में जिन्होंने ज्योति के बुद्बुद् जगाये,
वे सजीले स्वर तुम्हारे क्षितिज सीमा बाँध आये,
हँस उठा अब अरुण शतदल
सा ज्वलित दिनमान !

नभ अपरिमित में भले हो पंथ का साथी सवेरा,
खोज का पर अन्त है यह तृण-कणों का लघु बसेरा,
तुम उड़ो ले धूलि का
करुणा - सजल वरदान !

—दीपशिखा

सजल है कितना सवेरा

सजल है कितना सवेरा !

गहन तम में जो कथा इसकी न भूला,
अश्रु उस नभ के, चढ़ा सिर फूल फूला,
झूम झुक झुक कह रहा हर श्वास तेरा !

राख से अंगार - तारे झर चले हैं,
धूम - बन्दी रंग के निर्झर खुले हैं,
खोलता है पंख रूपों में अँधेरा !

कल्पना निज देख कर साकार होते,
और उसमें प्राण का संचार होते,
सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा !

अलस पलकों से पता अपना मिटाकर,
मृदुल तिनकों में व्यथा अपनी छिपाकर,
नयन छोड़े स्वप्न ने, खग ने बसेरा !

ले उषा ने किरण-अक्षत हास-रोली,
रात अंकों से पराजय रेख धो ली,
राग ने फिर साँस का संसार घेरा !

सजल है कितना सवेरा !

—दीपशिखा

वंग भू शत वन्दना ले[1]

वंग भू शत वंदना ले।
भव्य भारत की अमर कविता हमारी वन्दना ले।

अंक में झेला कठिन अभिशाप का अंगार पहला,
ज्वाल के अभिषेक से तूने किया शृंगार पहला,
तिमिर सागर हरहराता,
संतरण कर ध्वंस आता,
तू मनाती है हलाहल घूँट में त्योहार पहला,
नीलकण्ठिनि ! सिहरता जग स्नेह-कोमल कल्पना ले।

वेणुवन में भटकता है एक हाहाकार का स्वर,
आज छाले से जले जो भाव से वे सुभर पोखर,
छन्द से लघु ग्राम तेरे,
खेत लय विश्राम तेरे,
बह चला इन पर अचानक नाश का निस्तब्ध सागर।
जो अचल बेला बने तू आज वह गति-साधना ले।

शक्ति की निधि अश्रु के क्या श्वास तेरे तोलते हैं ?
आह तेरे स्वप्न क्या कंकाल बन वन डोलते हैं ?
अस्थियों की ढेरियाँ हैं,
जम्बुकों की फेरियाँ हैं,
'मरण केवल मरण' क्या संकल्प तेरे बोलते हैं ?
भेंट में तू आज अपनी शक्तियों की चेतना ले।

१. बंगाल के अकाल के समय विरचित

किरण चर्चित, सुमन चित्रित, खचित स्वर्णिम बालियों से,
चिर हरित पट है मलिन शत शत चिता-धूमालियों में,
गृद्ध के पर छत्र छाते,
अब उलूक विरुद सुनाते,
अर्घ्य आज कपाल देते शून्य कोटर-प्यालियों से।
मृत्यु क्रन्दन गीत गाती हिचकियों की मूर्च्छना ले।

भृकुटियों की कुटिल लिपि में सरल सृजन विधान भी दे,
जननि अमर दधीचियों की अब कुलिश का दान भी दे,
निशि सघन बरसात वाली,
गगन की हर साँस काली,
शून्य धूमाकार में अब अर्चियों का प्राण भी दे।
आज रुद्राणी ! न सो निष्फल पराजय-वेदना ले।

तुंग मन्दिर के कलश को धो रहा 'रवि' अंशुमाली,
लीपती आँगन विभा से वह 'शरद' विधु की उजाली,
दीप लौ का लास 'बंकिम'
पूत धूम 'विवेक' अनुपम,
रज हुई निर्माल्य छू 'चैतन्य' की कम्पन निराली,
अमृत पुत्र पुकारते तेरे, अजर आराधना ले।

बोल दे यदि आज, तेरी जय प्रलय का ज्वार बोले,
डोल जा यदि आज, तो यह दम्भ का संसार डोले,
उच्छ्वसित हो प्राण तेरा,
इस व्यथा का हो सवेरा,
एक इंगित पर तिमिर का सूत्रधार रहस्य खोले।
नाप शत अन्तक सके यदि आज नूतन सर्जना ले।

भाल के इस रक्त चन्दन में ज्वलित दिनमान जागे,
मन्द्र सागर तूर्य पर तेरा अमर निर्माण जागे,

क्षितिज तम साकार टूटे,

प्रखर जीवन-धार फूटे,

जाह्नवी की ऊर्मियाँ हों तार भैरव राग जागे।
ओ विधात्री ! जागरण के गीत की शत अर्चना ले।
ज्ञान गुरु इस देश की कविता हमारी वन्दना ले।

वंग भू शत वन्दना ले।

स्वर्ण भू शत वन्दना ले।

—वंग दर्शन से

हे धरा के अमर सुत...

हे धरा के अमर सुत ! तुमको अशेप प्रणाम !
जीवन के अजस्र प्रणाम !
मानव के अनन्त प्रणाम !

वह प्रलय उद्दाम के हित अमिट बेला एक वाणी,
वर्णमाला मनुज के अधिकार की भू की कहानी,
साधना अक्षर अचल विश्वास ध्वनि-संचार जिसका,
मुक्त मानवता हुई है अर्थ का संसार जिसका,
जागरण का शंख-स्वन, वह स्नेह - वंशी - ग्राम !
स्वर - छान्दस् विशेष ! प्रणाम !

स्वर्ग ही के स्वप्न का लघु खण्ड चिर उज्ज्वल हृदय है,
काव्य करुणा का, धरा की कल्पना ही प्राणमय है,
ज्ञान की शत रश्मियों से विच्छुरित विद्युत्-छटा सी,
वेदना जग की यहाँ है स्वाति की क्षणदा घटा सी,
टेक जीवन - राग की उत्कर्ष का चिर याम !
दुख के दिव्य शिल्प ! प्रणाम !

चीर कर भू-व्योम को प्राचीर हों तम की शिलाएँ,
अग्निशर सी ध्वंस की लहरें जला दें पथ-दिशाएँ,
पग रहें सीमा, बने स्वर रागिनी सूने निलय की,
शपथ धरती की तुझे औ' आन है मानव हृदय की,
यह विरागं हुआ अमर अनुराग का परिणाम !
हे असिधार - पथिक ! प्रणाम !

शुभ्र हिम-शतदल-किरीटिन, किरण-कोमल-कुन्तला जो,
सरित-तुंग-तरंग मालिनि, मरुत-चंचल-अंचला जो,
फेन-उज्ज्वल अतल सागर चरणपीठ जिसे मिला है,
आतपत्र रजत-कनक-नभ चलित रंगों से धुला है,
पा तुझे यह स्वर्ग की धात्री प्रसन्न प्रकाम !
मानव - वर ! असंख्य प्रणाम !

—सन्धिनी

रवीन्द्र के महाप्रस्थान पर

यह विदा-वेला ।
अर्चना-सी आरती-सी यह विदा-वेला ।

धूलि की लघु बीन ले छू तार मृदु तृण के लचीले,
चुन सभी बिखरे कथा-कण हास-भीने अश्रु-गीले,
गीत मधु के, राग घन के, युग विरह के क्षण मिलन के,
गा लिये जिसने सभी स्वर नमित भू उन्नत गगन के,
साथ जिसकी उँगलियों के सृजन-पारावार खेला;
आज अभिनव लयवती उसकी विदा-वेला ।
अमर वेला ।

पंख पर आरोह के चिर सत्य के उपहार घूमें,
पुलिन पा अवरोह के रस-रूप-रँग के ज्वार झूमें,
शरद-स्मिति-सी दूध धोई, अतल मधुजल में भिगोई,
आँसुओं के कुन्द वन-सी रागिनी पल भर न सोई,
कंठ में जिसके हुआ है हर चिरन्तन स्वर नवेला;
यह उसी की मूर्च्छना शिंजित विदा-वेला ।
अमर वेला ।

तप बना आकाश विस्तृत साधना सुख का सबेरा,
सान्ध्य-रंगों से भरा अनुराग था सब का बसेरा;
गीत में जयघोष भी था हास में आलोक भी था,
शक्ति-झञ्झा में बसा नवनीत हिम का लोक भी था;
वह चली करुणा-सरित ले साथ अपने तड़ित्-वेला ।
अमर वेला ।

धीर वट की दी न नीप अशोक मन-विश्राम की दी,
ज्वाल में उसने हमें नित छाँह प्रेमिल प्राण की दी।
छवि धरा की ले नयन में भर व्यथा के छन्द मन में,
बाँध आकुल विश्व का सन्देश सब प्रस्थान-क्षण में,
मृत्यु के चिर श्याम अंचल में चला करने उजेला;
यह उसी आलोकवाही की विदा - वेला।
अमर वेला।

वह चला जिसके पगों ने शूल फूल बना समेटे,
वह चला जिसके दृगों ने सत्य कर कर स्वप्न भेंटे;
पुलक से सब क्षण बसाये साँस से कण कण मिलाए,
अमर अंकुर साध के चिर प्यास के मरु में उगाए,
अंक जिसके रह गए बन दीपकों का एक मेला;
आज दीपाली हुई उसकी विदा - वेला।
अमर वेला।

जो क्षितिज के पार पहुँचे ओ विहग ! वह लय मिलाओ,
भर दिशाएँ शून्य छलका कर सुमन ! साँसे लुटाओ,
दीन अब चातक न बोले वात घायल सी न डोले,
बढ़ अलक्षित तीर छू ले धीर सागर आज हौले;
अब चला गायक धरा का हँस अमर यश में अकेला।
ध्वनित अंतिम चाप से उसकी विदा - वेला।
अमर वेला।

सौंप दी वह वीण उसने रिक्त कर ली आज झोली,
सब लुटाकर सिद्धियाँ पुलकित करों से नाव खोली,
मत कहो 'निस्पन्द तम है, वह अमर तट चिर अगम है',
प्राण में संकल्प उसकी भृकुटियों पर दीप्त श्रम है।
बंधनों की चाह से वह मुक्ति-पथ में भी दुकेला;
अजर वरदानी अतिथि की यह विदा - वेला।
अमर वेला।

जग उठे मधुमास बन पतझार सब जिसके सहारे,
आज क्या प्रतिदान में देंगे उसे दो बूँद खारे ?
कलश जीवन स्नेह जल तो हर नयन शतदल कमल हो,
'पंच शुभ' निश्वास औ' साँसें कहें 'चिर मिलन पल हो'।
भेंट में उसको हृदय विश्वास का संसार दे ला।
स्वर्ग भू की संधि - सी है यह विदा - वेला।
अमर वेला।

स्वर निमंत्रित हम चले कब सुन कथा का शेष पाया,
चाप से आहूत पहचाने न पथ का अन्त आया;
स्वस्ति जीवन के पुजारी ! स्वस्ति सत् चित्-पंथ चारी !
स्वस्ति यह सुधि या जिसे हमने विरह का भार झेला।
यह तुम्हारे हास से रंजित विदा - वेला।
अमर वेला।

—सन्धिनी

प्रश्न

पूछ रहा हूँ आज स्वयं अपने से, उर में
हो सकता क्या एक कभी उससे अन्तर में ?

अवहेला को भूल कभी वह स्नेह - तरल मन,
कर लेगा स्वीकार गीत की भेंट अकिंचन ?

किस दिन मैं उज्ज्वल प्रसन्नचित कल्मष खोकर,
मिल पाऊँ आनन्द रूप से सम्मुख होकर ?

दर्शनयाचक मैं, कह दे क्या अवगुण मेरे,
जिनके कारण आज मुझे यह बन्धन घेरे ?

जो ज्ञानी हैं, पूछ चुका उनसे वहुतेरा,
सबका उत्तर एक वही : प्रभु रूठा तेरा।

अविनय ऐसा कौन आज तू भी जिसके हित,
स्नेह-सखा को किया चाहता इतना दंडित ?

हे दुर्लभ ! दे बता और तव दोष विगत मैं,
पहुँचूं तुझ तक त्वरित, भक्ति से नमित विनत मैं।

ऋग्वेद

भू-वन्दना

सत्य महत, संकल्प, यज्ञ, तप, ज्ञान, अचल ऋत,
जिस पृथिवी को धारण करते रहते अविरत,
भून और भवितव्य हमारा जिससे अधिकृत,
वह धरती दे ह -हित आँगन विस्तृत।

जिसके हैं बहु भाग समुन्नत, अवनत, समतल,
नही मानवों के समूह से वाधित, संकुल,
विविध शक्तिमय औषधियो की वृद्धि-विधायक,
यह पृथिवी नित रहे हमें स्थिति-मंगलदायक।

आश्रित जिस पर सभी सरित-सर-सागर के जल,
लहराता है जहाँ शस्य का शोभन अंचल,
जिस पर यह चल प्राणि-जगत है जीवित, स्पन्दित,
वही धरा दे हमें पूर्वजों का श्रेयस् नित।

फैलीं चारों ओर दिशायें दूर अबाधित,
जिस पर होते विविध अन्न कृषियाँ उत्पादित,
जो सयत्न करती बहुधा जीवन का पोषण,
वही हमारी भूमि शस्य दे औ' दे गोधन।

सृष्टि पूर्व जो रही सिन्धु में जलमय तन से,
ऋषियों ने की प्राप्त सिद्धि के अक्षय धन से,
परम व्योम वह अमर सत्य तेजस्-आच्छादित,
जिसका उर है, वही धरा दे शक्ति अपरिमित।

अप्रमाद, सेवारत, औ' समभाव निरन्तर
प्रवहमान है निशि - दिन जलधारायें जिस पर,
वह बहु धारावती हमारी धरती प्लावित,
दे हमको वर्चस्व और कर दे आप्यायित।

मापा करते जिसे दिवाकर - निशिकर - अश्विन,
रखकर जिस पर चरण विष्णु कर रहा संचरण।
रहित शत्रु, जिसको करता है इन्द्र प्रबलतम,
दे हमको वह भूमि पयस्, सुत को माता सम।

शोभित जिस पर अचल, हिमाचल, वनसुषमाकर,
अक्षत अमर अजेय खड़े हम उस वसुधा पर,
श्यामल गैरिक अखिल रूपमय मघवा-रक्षित,
उसी भूमि पर रहें सदा हम सुख से विचरित।

जो तुझमें उत्पन्न शक्ति औ' बल का आकर,
हमें उसी के बीच प्रतिष्ठित कर दे सत्वर,
पूत हमें कर धरापुत्र हम तुझसे लालित,
रसदायक पर्जन्य पिता से भी हों पालित।

हम सबके हित महत सदन बनकर तू रहती,
महत वेग, संचलन महत, कम्पन भी महती।
रहे महत निस्तन्द्र इन्द्र-छाया में ऐसी,
स्वर्णधरा तू, पर न हमें देना विद्वेषी।

तेरा जो शुभ गंध मिला ओषधि, जल-कण में,
अप्सरियाँ गन्धर्व जिसे रखते निज तन में।
उस सौरभ से गात हमारा तू सुरभित कर,
पड़े किसी की द्वेष-दृष्टि ओ जननि न हम पर।

जिस परिमल से नीलोत्पल के कोष रहे भर,
जिसे लगाते अमर, उषा के लग्न पर्व पर,
उसी गन्ध से भूमि ! हमारा कर आलेपन,
हो न हमारी ओर किसी का द्वेष भरा मन।

नारी में, नर में तेरा जो गन्ध समुज्ज्वल,
वीरों में, मृग-हस्ति-अश्व में जो बनता बल,
कन्या में जो कान्ति उसी सौरभ से चर्चित,
कर दे हमको जननि ! न चाहे कोई अनहित।

भू ही तो पाषाण, शिला, औ' धूलि-पटल में,
थामे सबको वही अंक अपने निश्चल में।
तेरा उर है हमें राशि सोने की अभिमत,
देते हैं हे भूमि तुझे हम आज नमन शत।

तेरे पावस औ' निदाघ तेरे मधु-पतझर,
तुझ पर रहती शरद, शिशिर सब ऋतुयें निर्भर।
तुझमे होते सदा दिवस औ' रजनी निर्मित,
ओ पृथिवी यह रहें हमारे ही सुख के हित।

जिसके उर पर विविध वनस्पतियाँ औ' तरुवर,
पाते ही रहते विकास ध्रुव और निरन्तर।
धरा हुई जो धारण करके यह जग सारा,
उसका वन्दन आज कर रहा गान हमारा।

अथर्ववेद

बुद्ध-जन्म

गिरिराजों से कीलित धरती
हुई तरी सी झंझा - कम्पित,
नभ निरभ्र से वृष्टि हुई नव
पंकज - संकुल चन्दन - सुरभित।

दिव्य वसन भू पर फैलाता
सुखद मनोरम बहा समीरण,
रवि ने अति भास्वरता पायी
सौम्य अग्नि जल उठी अनीन्धन।

विहग और मृगदल दोनों ने
रोक दिया कलरव कोलाहल,
शान्त तरंगों में बहता था
शान्त भाव से सरिता का जल।

शान्त दिशायें स्वच्छ हो गयीं
नील गगन था स्वच्छ मेघ विन,
पवन-लहरियों पर तिरता था
दिव्य लोक के तूर्यों का स्वन।

—बुद्धचरित्र

वसन्त

देव ! देखो मंजरित
सहकार का तरु,
गंध - मधु - सुरभित,
खिला जिसका सुमन-दल;

बैठ जिसमें मधु
गिरा में बोलता यह,
लग रहा है हेम
पंजर - बद्ध कोकिल।

रक्त पल्लव युक्त
आज अशोक देखो,
प्रेमियों के हित
सदा जो विरहवर्द्धन,

जान पड़ता दग्ध
ज्वाला से विकल हो,
कर रहे उसमें भ्रमर
के वृन्द कूजन।

आज उज्ज्वल तिलक
द्रुम को भेंट कर यह
पीतवर्ण रसाल
शाखा यों सुशोभित,

शुभ्र वेशी पुरुष के
ज्यों संग नारी
पीत केसर-अंग-
रागों से प्रसाधित।

सद्य ही जिसको
निचोड़ा राग के हित,
वह अलक्तक कान्ति-
शोभी फुल्ल कुरवक,

नारियों की नख-
प्रभा से चकित होकर
आज लज्जा-भार
से मानो रहा झुक।

तीर पर जिसके उगे
हैं सिन्धुवारक
देखकर इस पुष्करिणि
को हो रहा भ्रम,

धवल अंशुक ओढ़कर
मानो यहाँ हो
अंगना लेटी हुई
कोई मनोरम।

देव ! आज वसंत
में हो राग-उन्मद
बोलता है पिक सुनो
टुक यह मधुर स्वर,

और प्रतिध्वनि सी
उसी की जान पड़ता,
दूसरे पिक का 'कुहू'
में दिया उत्तर

मोह से उन्मत्त चित
प्रमदा जनों ने
हाव भावों के चलाये
अस्त्र अनगिन,

मृत्यु निश्चित सोचता
वह धीर संयत,
हो सका न प्रसन्न
और न खिन्न, उन्मन।

—बुद्धचरित

विदा

आज विदा होगी शकुन्तला
सोच हृदय आता है भर-भर,
दृष्टि हुई धुँधली चिन्ता से
रुद्ध अश्रु से कण्ठ रुद्ध स्वर।

जब ममता से इतना विचलित
व्यथित हुआ वनवासी का मन,
तब दुहिता विछोह नूतन से
पाते कितनी व्यथा गृहीजन।

गृहण किया था कभी न जिसने
तुम्हें पिलाये बिना स्वयं जल,
मण्डन प्रिय होने पर भी जो
नहीं स्नेह से तोड़ सकी दल।

जन्म तुम्हारे नव मुकुलों का
जिसके हित होता था उत्सव,
वह शकुन्तला जाती पतिगृह
आज अनुज्ञा दो इसको सब।

जिसका कुश से विद्ध देख मुख
इंगुदि-तेल लगाया क्षत-हर,
सावाँ कण दे पाला सुतसम
खड़ा हरिण वह राह रोक कर।

जिनसे उत्पक्ष्मण तेरे दृग
देख न पाते पथ नत-उन्नत,
धीरज धर कर अश्रु पोंछ ले
विषम-भूमि, हों चरण न विचलित।

× × ×

कमल वनों से हरित सरोवर
मिलें पंथ में रम्यान्तर हों,
छाया सहित पंथ के द्रुम भी
रवि-किरणों के आतपहर हों।

सरसिज के कोमल पराग सा
मृदुल पंथ का धूलि-निचय हो,
शान्त और अनुकूल पवन से
यह तेरा पथ मंगलमय हो।

—अभिज्ञानशाकुन्तल

राम

यत्नों के कारण जिसमें थे
विविध विनोद भाव भी सम्भव,
वीरों के संघर्ष जगाते
जगती में अद्भुत रस अभिनव।

मुग्धाक्षी का पूर्व विरह था
शत्रु नाश तक ही परिसीमित,
कैसे मूक विरह यह झेलूँ
जो निरुपाय, अवधि से विरहित।

जहाँ व्यर्थ सुग्रीव सख्य है
कपियों का भी व्यर्थ पराक्रम,
जाम्बवान की प्रज्ञा निष्फल
मारुति की गति नहीं जहाँ पर,

जहाँ विश्वकर्मा सुत नल भी
मार्ग बनाने में है अक्षम,
प्रिये कहाँ हो, जहाँ पहुँचने
में अशक्त है लक्ष्मण के शर?

× × ×

एक करुण रस ही निमित्त वश
विविध भाव में जाता है ढल,
ज्यों आवर्त वीचि बुदबुद में
परिवर्तित हो एक रहा जल।

—उत्तररामचरित

परिशिष्ट 'क'

महादेवीजी की जीवन-क्रमणिका

सम्वत् १९६४—शुभ जन्म, होली के दिन, फरुखाबाद, उत्तरप्रदेश।

,, १९६९—मिशन स्कूल, इन्दौर में शिक्षा प्रारम्भ। घर पर पढ़ाई के लिए एक पंडित, एक मौलवी, एक चित्र-शिक्षक तथा संगीत-शिक्षक का प्रबन्ध।

,, १९७३—विवाह, कुछ समय के लिए पढ़ाई स्थगित।

,, १९७६—क्रास्थवेट कालेज, प्रयाग में पुनः शिक्षा प्रारम्भ।

,, १९७८—मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। प्रान्त-भर में प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति मिली।

,, १९८२—इण्ट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। छात्र-वृत्ति मिली।

,, १९८४—इण्टर की परीक्षा पास की।

,, १९८६—बी० ए० पास किया।

बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग होने के कारण आप भिक्षुणी बनना चाहती थी। बी० ए० करने के पश्चात् ग्रीष्मावकाश में नैनीताल में सम्भावित गुरु बौद्ध महास्थविर से मिलीं। उन्होंने एक काष्ठ-पट्टिका की ओट से इनसे बात की। इन्हें यह बहुत ही अपमानकर लगा। अपने प्रति इतने अविश्वासी व्यक्ति को गुरु बनाना इन्होंने उचित नहीं समझा। प्रतिक्रिया-स्वरूप भिक्षुणी बनने का विचार ही त्याग दिया। उसी

समय ताकुला, नैनीताल में महात्मा गांधी के सम्पर्क और प्रेरणा से इनका मन सामाजिक कार्यों की ओर उन्मुख हो गया। प्रयाग के आसपास के गाँवों में जाकर बच्चों को पढ़ाना और उनमें शिक्षा की रुचि का उन्मेष करना इनका नियमित कार्यक्रम बन गया, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय तक चलता रहा।

सम्वत् १९८७—अस्वस्थ होने के कारण साल-भर के लिए अध्ययन बन्द हो गया। इस वर्ष का अधिकतर समय रामगढ, ताकुला, नैनीताल में बीता। प्रयाग में अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन का संयोजन किया।

१९८९—प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० किया। प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का कार्यभार सँभाला और चाँद का निःशुल्क सम्पादन भी करने लगी।

१९९०—प्रयाग में कवीन्द्र रवीन्द्र से भेंट। मीरा जयन्ती का शुभारम्भ किया।

१९९०—'नीरजा' पर सक्सेरिया पुरस्कार मिला। बदरीनाथ की पैदल यात्रा की।

१९९२—कलकत्ते में आयोजित जापानी कवि योन नागूची के स्वागत-समारोह में भाग लिया और शान्ति निकेतन में गुरुदेव से भेंट की।

१९९४—रामगढ़, नैनीताल में 'मीरा मंदिर' नामक कुटीर बनवाया।

१९९६—बदरी-केदार की दूसरी बार पैदल यात्रा की।

१९९९—'विश्ववाणी' के बुद्ध-अंक का सम्पादन किया।

२०००—'स्मृति की रेखाएँ' पर द्विवेदी पदक प्राप्त हुआ।

२००१—हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' मिला। 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की।

२००२—'साहित्यकार संसद' के लिए गंगा के किनारे रसूलाबाद, प्रयाग में एक भवन खरीदा।

सम्वत् २००७—'साहित्यकार संसद' की ओर से अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन तथा साहित्य पर्व का सफल आयोजन किया। तत्कालीन राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी द्वारा 'संसद' में 'वाणी मंदिर' का शिलान्यास सम्पन्न हुआ। प्रसाद जयन्ती समारोह मनाया गया और १८ फरवरी से २२ फरवरी तक विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों के साथ साहित्य पर्व चलता रहा।

,, २००९—स्वतंत्रता के पश्चात् गठित उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् की सम्मानित सदस्या मनोनीत हुई। श्री इलाचन्द्र जोशी, श्री दिनकर और श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय को साथ लेकर दक्षिण भारत की साहित्यिक यात्रा में कन्याकुमारी तक गई। केन्द्रीय सरकार से कापीराइट नियम में संशोधन की माँग की। 'साहित्यकार संसद' से निराला की कापीराइट बिकी काव्य-कृतियों से कविताएँ लेकर 'अपरा' नामक काव्य-संग्रह निकला। लीडर प्रेस ने प्रसन्नता से और दूसरे प्रकाशकों ने विवशता से कापीराइट के अधिकार को छोड़ दिया।

,, २०११—दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की संस्थापक सदस्या चुनी गई।

,, २०१२—'साहित्यकार संसद' के मुख-पत्र 'साहित्यकार' का प्रकाशन और श्री इलाचन्द्र जोशी के साथ सम्पादन शुरू किया। 'साहित्यकार संसद' के तत्त्वावधान में उत्तरायण (ताकुला) नैनीताल में अन्तर्प्रादेशिक साहित्यकार शिविर का एक माह के लिए आयोजन किया। प्रयाग में नाट्य-संस्था 'रंगवाणी' की स्थापना की, जिसका उद्घाटन प्रसिद्ध मराठी नाटककार मामा वरेरकर ने किया। भारतेन्दु के जीवन पर आधारित नाटक खेला गया। तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामंत्री मौलाना आजाद की हिन्दी-साहित्य-विषयक भ्रांत धारणा और वक्तव्य के विरोध में

राष्ट्रकवि गुप्तजी तथा अन्य साहित्यकारों के साथ पत्रों में एक तीखी विज्ञप्ति प्रकाशित की ।

सम्वत् २०१३—पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित की गई।

,, २०१७—सर्वसम्मति से प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति निर्वाचित हुई ।

,, २०२०—लेखिका संघ, दिल्ली की ओर से तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन द्वारा अभिनन्दित। रात को इनके सम्मान में जो कविगोष्ठी आयोजित हुई थी, उसमें स्वर्गीय प्रधान मंत्री नेहरू ने इनका स्वागत किया और प्रायः डेढ़ घण्टे तक काव्य-पाठ सुनते रहे। किसी हिन्दी-कविगोष्ठी में प्रथम बार उन्होंने इतना समय बिताया ।

,, २०२१—भारतीय परिषद्, प्रयाग की ओर से कविवर पंत ने इनके निवास पर एक बृहत् अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया।

,, २०२३—षष्टि-प्रवेश के उपलक्ष्य में साहित्यकारों की ओर से पंतजी ने एक संस्मरण ग्रंथ भेंट किया।

परिशिष्ट 'ख'

कृतियों तथा विशेष भाषणों की क्रमणिका

काव्य

सम्वत् १९७१—काव्य की प्रथम शिशु रचना।

,, १९७२—ब्रजभाषा की समस्यापूर्ति और पदों की रचनाएँ।

,, १९७५—खड़ी बोली की प्रथम पूर्ण रचना 'दिया'।

,, १९७७—सौ छन्दों में एक करुण कथा का खण्ड काव्य, अबला, विधवा तथा माँ भारती आदि रचनाएँ। आर्य महिला और महिला जगत् में रचनाओं का प्रकाशन।

,, १९७९—चाँद के प्रथम अंक मे कविता का प्रकाशन। तब से अन्य पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त चाँद के प्रायः प्रति अंक में रचनाएँ निरन्तर प्रकाशित होती रही। धीरे-धीरे इनकी काव्य-प्रवृत्ति इनकी मूल भावधारा की ओर उन्मुख हो चली।

,, १९८०—कालेज के विद्यार्थियों को खेलने के लिए एक काव्य-रूपक की रचना।

,, १९८७—'नीहार', प्रथम काव्य-कृति प्रकाशित हुई।

,, १९८९—'रश्मि' द्वितीय काव्य-कृति

,, १९९१—'नीरजा' तृतीय काव्य-कृति

,, १९९३—'सान्ध्यगीत' चतुर्थ काव्य-कृति

'सान्ध्यगीत' से इनका चित्रकर्त्री रूप भी सामने आया, क्योंकि इसमें उनके द्वारा अंकित 'सन्ध्या', 'वर्षा',

'अरुणा', 'निशीथिनी' तथा 'मृदु महान' भावपूर्ण चित्रों का भी समावेश है।

सम्वत् १९९९—'दीपशिखा' पंचम काव्य-कृति। इसमें प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि में चित्रांकन किया गया है। काव्य, संगीत और चित्र का यह सम्मेलन 'दीपशिखा' की अनन्य विशेषता है।

२०००-२००१—'बंग-दर्शन', बंगाल के अकाल पर लिखित विभिन्न कवियों की कविताओं के संग्रह का सम्पादन-प्रकाशन।

„ २०१६—'सप्तपर्णा' इसमें आर्षवाणी से लेकर वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति तथा जयदेव के मार्मिक तथा महत्त्वपूर्ण काव्यांशों का काव्यबद्ध अनुवाद।

„ २०२०—'हिमालय', चीन के आक्रमण के समय राष्ट्रीय गौरव और साहस जगाने के उद्देश्य से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों की हिमालय पर लिखी कविताओं तथा अन्य राष्ट्रीय कविताओं का संकलन एवं प्रकाशन।

गद्य

सम्वत् १९९८—'अतीत के चलचित्र'—रेखाचित्र।

„ १९९९—'शृंखला की कड़ियाँ', नारी-विषयक सामाजिक निबंध।

„ २०००—'स्मृति की रेखाएँ'—रेखाचित्र।

'विवेचनात्मक गद्य'—आलोचनात्मक निबंध।

„ २०१३—'पथ के साथी'—संस्मरण।

'क्षणदा'—ललित निबंध।

„ २०१९—'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध'—आलोचनात्मक निबंध।

भाषण

महात्मा गाँधी द्वारा इन्दौर साहित्य सम्मेलन में सबसे-

रिया पुरस्कार दिये जाने के बाद का कृतज्ञता भाषण ।

सम्वत् २०११—लखनऊ की विधान सभा में कुंभ-दुर्घटना के दायित्व पर भाषण । साहित्य अकादमी के उद्‌घाटन समारोह में संस्था के असांस्कृतिक नाम तथा अँग्रेज़ी भाषा में उसकी कार्यवाही होने के विरोध में अत्यत साहसिक भाषण ।

,, २०१३—प्रयाग में आयोजित निराला की साठवी वर्षगाँठ के अवसर का भाषण ।

,, २०१७—प्रतापगढ़ मे प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण ।

,, २०१८—वाराणसी में प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक समारोह का अध्यक्षीय भाषण ।

,, २०१९—एनीबीसेण्ट हाल, प्रयाग में प्रेमचंद स्मृति दिवस का भाषण ।

,, २०२०—'साहित्यकार संसद' द्वारा आयोजित भारतीय लेखक सम्मेलन मे भारत की सांस्कृतिक एकता पर भाषण ।

,, २०२१—कलकत्ता मे प्रसाद जयन्ती समारोह का उद्‌घाटन भाषण ।

,, २०२२—कविवर पंत के महाकाव्य 'लोकायतन' पर विचार-विमर्श के लिए प्रयाग में आयोजित गोष्ठी में 'लोकायतन' पर भाषण ।

,, २०२३—साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा आयोजित संत-साहित्यकार सम्मेलन में साहित्य और अध्यात्म के समन्वय पर भाषण । एनीबीसेण्ट हाल में कविवर पंत की छयासठवीं वर्षगांठ के समारोह में अध्यक्षीय भाषण । प्रयाग संगीत महाविद्यालय का दीक्षान्त भाषण । षष्टि-प्रवेश के शुभ अवसर पर आयोजित अपने अभिनन्दन और संस्मरण ग्रंथ भेंट के पश्चात् कृतज्ञता भाषण ।

परिशिष्ट 'ग'

महादेवी जी के साहित्य पर लिखी कुछ पुस्तकें

पुस्तक	लेखक
महादेवी वर्मा	—गंगाप्रसाद पाण्डेय : सतकुमार वर्मा
महादेवी वर्मा	—रामरतन भटनागर
महादेवी वर्मा	—लक्ष्मीसहाय सिनहा
महादेवी का वेदना भाव	—जयकिशन प्रसाद
महादेवी काव्य परिशीलन	—भागीरथी दीक्षित
महादेवी और उनका आधुनिक कवि	—सुरेशचन्द्र गुप्त
महादेवी की रहस्य-साधना	—विश्वम्भर मानव
महादेवी की काव्य-साधना	—शिवमंगल सिंह 'सुमन'
महादेवी : साहित्य, कला और जीवन-दर्शन	—रामचन्द्र गुप्त
'नीरजा' विवेचन	—सत्यपाल चुघ
महादेवी वर्मा : काव्य-कला और जीवन दर्शन	—स० शचीरानी गुर्टू
छायावाद और महादेवी	—नन्दकुमार राय
'दीपशिखा'	—शान्तिस्वरूप
महादेवी वर्मा	—देशराजसिंह भाटी
महादेवी वर्मा : मूल्यांकन	—कुमार विमल
महादेवी की काव्य-साधना	—सत्यपाल चुघ
महादेवी	—सं० इन्द्रनाथ मदान
'स्मृति की रेखाएँ'	—राजनाथ शर्मा
गद्य-लेखिका महादेवी वर्मा	—योगराज थानी

महादेवीजी के साहित्य पर सहायक सामग्री

काव्य में अभिव्यंजनावाद —लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
काव्य में अप्रस्तुत योजना —रामदहिन मिश्र
आधुनिक काव्य में छन्द-योजना —पुत्तूलाल शुक्ल
काव्य और कवि —विश्वमोहनकुमार सिनहा
छायावाद की काव्य-साधना —श्रीपालसिंह 'क्षेम'
जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त —लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
विचार और अनुभूति —नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी —नन्ददुलारे बाजपेयी
छायावाद —नामवरसिंह
विवेचना —इलाचन्द्र जोशी
मूल्य और मीमांसा —कुमार विमल
साहित्य-दर्शन —जानकीवल्लभ शास्त्री
साहित्य-चिंता —देवराज
छायावाद का पतन —देवराज
वेणुवन —रामधारीसिंह 'दिनकर'
छायावाद : रहस्यवाद —गगाप्रसाद पाण्डय
गीति-काव्य —रामखेलावन पाण्डेय
काव्य और कल्पना —रामखेलावन पाण्डेय
काव्य में प्रकृति-चित्रण —रामेश्वरलाल खण्डेलवाल
छायावादी कविता का कला-विधान —बलवीरसिंह
हिन्दी काव्य में छायावाद —दीनानाथ शरण
आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र-विधान —रामयतन सिंह
आधुनिक साहित्य : व्यक्तिवादी भूमिका —बलभद्र तिवारी
गीति-काव्य का विकास —लालधर त्रिपाठी
आधुनिक साहित्य में समालोचना का विकास —वेंकट शर्मा
छायावाद : पुनर्मूल्यांकन —सुमित्रानन्दन पंत
हिन्दी साहित्य —हजारीप्रसाद द्विवेदी

आलोचना : उद्भव और विकास	—भगवतस्वरूप मिश्र
आधुनिक काव्य में सौन्दर्य-भावना	—शकुंतला शर्मा
छायावाद : काव्य तथा दर्शन	—हरनारायण सिंह
आधुनिक कविता का मूल्यांकन	—इन्द्रनाथ मदान
हिन्दी काव्य में अन्योक्ति	—संसारचन्द्र
काव्य में रहस्यवाद	—बच्चूलाल अवस्थी
भारतीय कला के पदचिह्न	जगदीश गुप्त
हिन्दी साहित्य कोश	—सं० धीरेन्द्र वर्मा
महादेवी अभिनन्दन ग्रंथ	—भारती परिषद, प्रयाग
महादेवी संस्मरण ग्रंथ	—सं० सुमित्रानन्दन पंत
पुष्करिणी	—अज्ञेय